थार मरूस्थल की परिस्थितिकी

कक्षा छः से आठ तक के विद्यार्थियों के लिए मरूस्थलीय पर्यावरण पुस्तक

EUROPEAN UNION
Funded by

उन्नति
UNNATI

प्रकाशक - उन्नति

website : www.unnati.org

उन्नति

UNNATI

प्रथम संस्करण - 2024

EUROPEAN UNION
Funded by

किताब के विकास एवं मुद्रण के लिए यूरोपियन यूनियन का विशेष आभार

संकलन : दिलीप बीदावत

डिजाईन एण्ड लेआउट : कम्प्यूटर क्राफ्ट, जोधपुर

पुस्तक के बारे में

यूरोपियन संघ के सहयोग से संचालित मरुधरा में जल स्वावलंबन परियोजना के तहत कक्षा 06 से 08 तक के विद्यार्थियों को स्थानीय पर्यावरण एवं परिवेश की जानकारी देने के लिए स्कूल पर्यावरण शिक्षण कार्यक्रम संचालित किया जाता है। यह कार्यक्रम सहभागी शिक्षण प्रक्रिया से चलाया जाता है। सरहद भ्रमण सहभागी शिक्षण की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

स्कूल पर्यावरण शिक्षण कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की सहभागी जल विभाजन प्रक्रिया पर समझ बनाना है। सहभागी जल विभाजन के आधार पर वर्षा जल संग्रहण के पारंपरिक तरीकों को समझते हैं। वर्षा जल संग्रहण के पारंपरिक स्त्रोतों के इतिहास, उपयोगिता, प्रबंधन के सिस्टम एवं वर्तमान स्थिति के बारे में अनुभवी लोगों से जानकारी प्राप्त करते हैं। जल स्त्रोतों के उपयोग एवं प्रबंधन व्यवस्था में आए बदलावों के कारणों को जानते हैं। जल विभाजन क्षेत्र के स्वास्थ्य में सकारात्मक प्रभाव के उपायों पर चर्चा करते हैं।

सारहद भ्रमण के दौरान जल संग्रहण क्षेत्र विभाजन के रास्तों, जल संग्रहण के स्त्रोतों व मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के साथ जुड़ाव पर समझ बनाते हैं।

शिक्षक, गांव के अनुभवी लोग तथा विद्यार्थी जल संग्रहण क्षेत्र का भ्रमण करते हैं। जल संग्रहण के उस स्थान से शिक्षण यात्रा प्रारंभ करते हैं जहां से वर्षा का पानी बहकर अलग-अलग दिशाओं में जाता है। जितनी जल धाराएं निकलती हैं, अलग-अलग दल बनाकर जल धाराओं के साथ चलते हुए जल स्त्रोतों तक पहुंचते हैं। प्रत्येक दल के साथ शिक्षक, अनुभवी लोग जुड़ते हैं तथा संवाद करते हुए आगे बढ़ते हैं। यात्रा के बीच जितने प्रकार की वनस्पतियां दिखाई देती है, उनके पत्तों, टहनियों के नमूने एकत्रित करते हैं। जीव-जंतुओं के अवशेष जैसे उनके पंख, बीट, मिंगणी आदि एकत्रित करते हैं।

जल स्त्रोत पर पहुंचकर अनुभवी लोगों से उनके इतिहास अर्थात कब बना, किसने बनाया, कैसे बनाया, पानी कहां से कैसे आता है व उसका उपयोग कौन व कैसे करते हैं। जल स्त्रोत की वर्तमान स्थिति को देखते हैं, पहले और अब में उपयोग, विकास, प्रबंधन को लेकर आए बदलावों के कारणों तथा बेहतरी के उपायों पर चर्चा करते हैं, समझ बनाते हैं।

निर्धारित समय गांव की सरहद का भ्रमण पूरा कर वापस विद्यालय लौटते हैं। कार्य को समूहों में विभाजित करते हैं। जल धाराओं, जल स्त्रोतों को दर्शाते हुए भ्रमण का नजरी नक्शा बनाते हैं। प्राप्त जानकारी को चार्ट पेपर पर व्यवस्थित लिखते हैं। कुछ बच्चे वनस्पतियों, जीव-जंतुओं के एकत्रित किए गये नमूनों को चार्ट पर चिपकाते हैं, उनके नाम, उपयोग के बारे में अनुभवी लोगों से जानकारी लेकर लिखते हैं।

इस दौरान कुछ विद्यार्थी पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन कर जल चक्र, जैव विविधता, जलवायु आदि विषयों पर चित्र, पोस्टर, मॉडल, गीत, सलोगन, तैयार करते हैं। उन्नति द्वारा विकसित किए गये सांप सीढ़ी, अंतर पहचानो एवं जाल का खेल के माध्यम से प्राकृतिक संतुलन, जल स्त्रोतों, चारागाहों की इस संतुलन में भूमिका एवं महत्व को समझते हैं। इनके संरक्षण, सुरक्षा, विकास एवं प्रबंधन के उपायों, सरकारी प्रावधानों एवं अवसरों के बारे सीखते-सिखाते हैं।

इस प्रक्रिया से विद्यार्थियों के पास अपने गांव के पर्यावरण, परिवेश को लेकर महत्वपूर्ण जानकारी का संकलन तैयार हो जाता है। विद्यार्थी इसकी प्रदर्शनी तैयार करते हैं। स्कूल परिसर में प्रदर्शनी लगाकर अन्य विद्यार्थियों के साथ प्राप्त ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं।

सहभागी पर्यावरण शिक्षण कार्यक्रम से बच्चे स्थानीय परिवेश पर अपनी पक्की व ठोस समझ बनाते हैं।

अनुक्रमणिका

विवरण		पृष्ठ संख्या
1.	जाल का खेल	4
2.	सांप सीढ़ी का खेल	7
3.	अंतर ढूंढो, कारण जानो, सुधार के बिंदु पहचानो, बदलाव के कार्य तय करो	10
4.	सरहद भ्रमण	12
5.	मंथन या निबंधन लेखन प्रतियोगिता	16
6.	मरुधरा में घास की प्रजातियां	25
7.	रेगिस्तान के प्रमुख वृक्ष	32
8.	मरुस्थल के पौधे	43
9.	मरुधरा के जीव-जंतु	49
10.	मरुधरा के जंगली जानवर	62
11.	मरुस्थल के मांसाहारी जानवर	64
12.	सरीसृप प्रजाति के जीव	66
13.	मरुधरा में तितलियों का संसार	70

प्रस्तावना

यह पुस्तिका एवं इसमें संग्रहित सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं का संकलन समुदाय के अनुभव आधारित लोक विज्ञान पर केंद्रित है। इसे तैयार करने का उद्देश्य विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं को स्थानीय पर्यावरण, जैव विविधता, जलवायु एवं इन सबके गठजोड़ से बने पारिस्थितिक तंत्र की शिक्षा प्रदान करना है। पुस्तिका एवं इसमें संग्रहित सामग्री एवं शिक्षण टूल लंबी प्रक्रिया एवं प्रयोग के बाद तैयार हुए हैं। तैयार टूल को विद्यालयों में बच्चों व शिक्षकों के साथ कार्यक्रम आयोजित कर परखा गया। छात्र-छात्राओं का, पारंपरिक लोक विज्ञान का ज्ञान रखने वाले बुजुर्गो के साथ संवाद, जल स्त्रोतों, चारागाहों का भ्रमण आदि से बनी सीख को शामिल किया गया है।

थार का रेगिस्तान एक अलग अतिसंवेदनशील पारिस्थितिक जॉन है। यह दुनिया के बाकी रेगिस्तानों से अलग है। जीवन की संभावना अधिक होने के कारण ही यहां पर सदियों से जीवन फला-फूला और विकसित हुआ है। जीवन का विकास एकाएक अचानक से नहीं हुआ। हजारों सालों की अनुकूलन प्रक्रिया का परिणाम है। वनस्पतियों, जीव-जंतुओं ने यहां की गर्म एवं शुष्क जलवायु के अनुसार जीवन को ढाला। धीरे-धीरे इन्सानों की बसावट हुई। मानव ने भौगोलिक एवं मौसमिक जटिलताओं को समझा और प्रकृति के साथ तालमेल बनाते हुए संतुलित जीवन-यापन के रास्ते निकाले।

थार के रेगिस्तान में जीवन-यापन की मुख्य जटिलता पानी की कमी रहा। सूखा व अकाल की बारंबारता इस जटिलता को और बढ़ा देती है। बरसात के पानी को एकत्रित करने के लिए संसाधनों का निर्माण और संतुलित उपयोग की उत्तम व्यवस्था बनाकर समाधान किया। थार की प्रकृति के साथ जरा सा भी हस्तक्षेप किए बिना स्वयं को प्रकृति के अनुकूल ढाला। खेती एवं पशु आधारित आजीविका का संवर्धन किया। मौसम के बदलाव और पूर्वानुमानों का गहन अध्ययन, वनस्पतियों एवं जीव-जंतुओं के व्यवहार से समझा, गीतों, दोहों के माध्यम से मन में संग्रहित किया, व्यवहार में लागू किया। अक्षयतृतीया के दिन खेत में जाकर सुगन (शकुन) चिड़ी के दिखने, उड़ने व बोलने की प्रक्रिया से वर्षा व फसल का अनुमान, तालाब की पाल पर टिटहरी के अंडे की ऊंचाई से बरसात व जलस्त्रोतों में पानी भराव का अनुमान, सुगी (परपल सनबर्ड) के घोंसले की ऊंचाई से प्रमुख खाद्यान्न फसल बाजरे की पैदावार और खेजड़ी की कौमल कौंपलों के जल जाने पर बरसात के सौ फीसदी आने जैसे ज्ञान को अर्जित करने में कई पीढ़ियों ने अध्ययन किया। बाद के समय में शिक्षा के प्रसार के साथ लिखित दस्तावेजों में भी ढाला गया। डंक-भडली के दोहे इसी ज्ञान का संकलन है।

जैव विविधता को लेकर भी मरुधरा का समुदाय काफी संवेदनशील रहा है। जैव विविधता के सरंक्षण को आस्था और परंपराओं के साथ जोड़ कर उनके सरंक्षण की व्यवस्था आज भी मरुधरा के गांवों में देखने को मिलती है। किसान बरसात के बाद हल जोतता है, तो सबसे पहले पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं के नाम का बीज डालता है, फिर बहन-बेटियों, साधु-संतों, मेहमानों के नाम का बीज डालता है। उसके बाद कुदरत से प्रार्थना करता है कि मेरे हिस्से का मुझे भी देना। चुल्हे पर सबसे पहली रोटी जीवों को समर्पित करने की परंपरा, हरिण व खेजड़ी वृक्ष का संरक्षण जैसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। भले ही मरुधरा के समुदायों ने इसे धार्मिक आस्था के साथ जोड़ा, लेकिन यह उनके जैव विविधता के सरंक्षण एवं प्रतिबद्धता का परिचय है।

प्रकृति की उदारता भी मरुधरा के लिए कम नहीं है। गर्मी-शर्दी, अकाल, सूखा, शुष्कता के साथ इन परिस्थितियों में जिंदा रहने वाली सैकड़ों प्रकार की जीव प्रजातियां और वनस्पतियां भी दिल खोलकर दी है। इतना ही नहीं, मरुधरा के पर्यावरण से प्रभावित प्रवासी पक्षियों की प्रजातियां भी मेहमान के रूप में आती हैं और यहां की जैव विविधता, पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित बनाए रखने में योगदान देती हैं। मरुधरा में जैव विविधता, पारिस्थितिक तंत्र, जलवायु और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में यहां के पारंपरिक जल स्त्रोतों और चारागाहों के बिना संभव नहीं था, और ना ही भविष्य में संभव होगा। यह जैव विविधता संरक्षण के प्रमुख केंद्र रहे हैं। बारहोमास फल-फूल देने वाली वनस्पतियां पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं को पोषण प्रदान करती है।

पाठ्य पुस्तकों में पर्यावरण, जलवायु, जैव विविधता, मौसम एवं जीवन पर अध्ययन के लिए अच्छा खासा ज्ञान है। लेकिन स्थानीय पर्यावरण के साथ भावनात्मक जुड़ाव एवं व्यावहारिक क्रियाशीलता में कमी आती जा रही है। पुराने समय में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में लोक विज्ञान के ज्ञान का हस्तातंरण व्यावहारिक ज्ञान पर अधारित था। विभिन्न उत्सवों, पर्वो, लोकाचार प्रक्रियाओं में तीन पीढ़ियां साथ जुड़ती और बुजुर्गो के ज्ञान व व्यवहार का अनुसरण करती थी। समदरिया हिलोरना, अक्षय तृतीया, हाली अमावश, जल स्त्रोतों को उपयोगी बनाए रखने के लिए लासिपा, बिराड़ (श्रमदान) जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से ज्ञान का अदान-प्रदान होता था। कई कारणों से इसमें अवरोध आ गया। इस अवरोध को कम करने के विचार स्वरूप यह पुस्तिका उपयोगी साबित हो सकेगी।

जाल का खेल

समय : 1 घंटा

उद्देश्य :

सहभागी प्रकिया से प्रकृति के चक्र को समझने-समझाने के लिए यह खेल बेहद उपयोगी है। प्रकृति के सभी तत्वों का एक दूसरे के साथ जुड़ाव, परस्पर निर्भरता से प्राकृतिक संतुलन कैसे बनता है, आधुनिक विकास के साथ प्रकृति की किसी सूक्ष्म इकाई को अनदेखा करने से कैसे सभी घटक प्रभावित होते हैं, इस पर विचार करने, वर्तमान में विकास, उत्पादन की प्रक्रियाओं के प्रभाव को समझने, क्या पाने के लिए क्या खो रहे हैं, या खोया है, जीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ा या पड़ने वाला है, प्रकृति को हुए घाटे की भरपाई के उपायों पर सोचने एवं उनको व्यवहार में उतारने की प्रेरणा देना है।

खेल के लिए सामग्री :

1. प्रकृति के तत्वों, पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं, जल स्त्रोतों, चारागाहों आदि प्रकृति के सभी घटकों के नाम लिखे ए-4 पैपर के चार भाग जितने साइज के कार्ड

2. सैफ्टी पिन

3. धागे का गट्टा (दीवार चिनवाई में काम आने वाला सूत धागा)

खेल की प्रक्रिया :

संभागियों को गोल घेरे में खड़ा करना। न्यूनतम संख्या 15 से 20 तक हो सकती है।

कार्डो पर संभागियों से पूछकर प्रकृति के घटकों, तत्वों के नाम लिखें जैसे-

पेड़	हवा	बादल	सूर्य	पक्षी	जानवर

एक तत्व का नाम दुबारा नहीं आए।

उदाहरण :

1. संभागियों को खेल के बारे में समझाएं। यह एक खेल है, जिसके द्वारा हम प्रकृति को समझने का प्रयास करते हैं। कुछ समय के लिए हम प्रकृति की अलग-अलग चीजें बनते हैं। आपको एक कार्ड देंगे उस कार्ड में जो नाम लिखा है, उसके अनुसार बताएं कि मैं कौन हूं, प्रकृति में मेरा काम क्या है, मैं नहीं होऊं तो प्रकृति में क्या प्रभाव हो सकता है।

2. एक संभागी को एक कार्ड देना जिस पर प्रकृति के किसी संसाधन जैसे, जीव-जंतु, पशु-पक्षी, नाडी, नाडा, तालाब, बावड़ी, कुंआ, चारागाह, भूमि, पहाड़, वृक्ष, घास, खेत, नदी, पहाड़, हवा, बादल, मानव, तितली, भवंरे, मधुमक्खी, कौए, गिद्द आदि.....। संभागी संख्या ज्यादा है तो अलग-अलग पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, जानवरों के नाम लिख कर कार्ड की संख्या बढ़ा सकते हैं।

3. किसी एक संभागी को डोरे का गट्टा पकड़ाएं। वह डोरे का सिरा कस कर पकड़ेगा, उसके बाद संभागी को कहना कि आपका जिसके साथ संबंध है, उसको धागे से जोड़ें। उदाहरण के लिए बरसात का हवा से, जल स्रोतों से आदि..।

4. जिस के पास डोरे का गट्टा जाएगा, वह डोरे को पकड़ कर, गट्टा दूसरे संभागी की तरफ फैंकेगा और बताएगा कि वह उससे किस प्रकार से जुड़ा हुआ है।

5. यह क्रम तब तक जारी रखना है, जब तक सभी भाग लेने वाले संभागियों के पास कम से कम एक बार डोरे का गट्टा पहुंच गया हो। इस प्रकार संभागियों के बीच डोरे का जाल बन जाएगा।

1. जाल बन जाने के बाद संभागियों से पूछें कि इस खेल से आपको क्या समझ आया है। संभागियों के विचार लिखें। अब किसी एक संभागी से कहें कि वह अपने डोरे को थोड़ा खींचे। हम देंखेंगे कि एक के खींचने से बाकी सभी संभागियों पर उसका असर हो रहा है। उनका हाथ साथ में खिंच रहा है या अंगुली दर्द करने लगेगी। यहाँ संभागियों को बताएं कि प्रकृति के किसी एक तत्व में बदलाव आने से बाकी घटकों पर तनाव आता है।
2. किसी एक संभागी को डोरा छोड़ने के लिए कहें। सभी संभागियों से पूछें, एक के धागा छोड़ने से जाल में कोई फर्क आया। हां, तो क्या।
3. जिस संभागी ने डोरा छोड़ा है, उससे और किन-किन का संबंध है, कौन-कौन प्रभावित होते हैं, उन्हें भी डोरा छोड़ने को कहें। संभागियों से पूछें, अब क्या फर्क दिख रहा है।
4. पूरा जाल बिखर जाएगा।

चर्चा के बिंदु-

- यह प्रकृति का एक जाल है। प्रकृति का अपना बनाया हुआ एक तंत्र है जिसके कारण हम सभी जिंदा हैं। प्रकृति की हर छोटी-बड़ी चीज एक दूसरे से जुड़ी हुई है। जीवन के लिए जिन तत्वों की जरूरत होती है, वह सभी प्रकृति में निहित है। इसमें सभी जीवों की भोजन कड़ी बनी हुई है। सभी एक दूसरे पर निर्भर हैं। इनमें से कुदरती अथवा मानवीय छेड़-छाड़ के कारण किसी एक में तनाव या दबाव आता है तो प्रकृति के सभी तत्व प्रभावित होते हैं।

- संभागियों से पूछें कि अब जाल कैसा है ? यह जाल बिखर जाएगा तो क्या होगा ? हमारे गांव और आस-पास के क्षेत्र की इस खेल से तुलना करें, क्या प्रकृति का यह जाल टूट रहा है।

- संभागियों द्वारा अपने आस-पास के परिवेश में प्रकृति के जाल में आई टूटन को लिखें, बीच-बीच में सवाल भी पूछें, आपके जल स्त्रोत, चारागाह, पशु-पक्षी, जीव-जंतु, गर्मी, बरसात आदि में कोई बदलाव आया है।
    - किन-किन कारणों से टूट रहा है, चर्चा करें। फैसलीटेटर कारणों को लिखें।
    - क्या प्रकृति के इस जाल को फिर ठीक करना है। अगर हां, तो हम स्वयं क्या-क्या करेंगे। कामों की एक लिस्ट बनेगी।
    - इन कार्यो में से अगले छः माह में क्या-क्या करेंगे, इस प्रकार प्रत्येक संभागी अपने गांव का नियोजन करे।
    - गांव वार बने नियोजन को चार्ट पर लिखें तथा विद्यालय में सार्वजनिक रूप से चस्पा करें। प्रत्येक सप्ताह शनिवार को इसकी समीक्षा करें।

सांप सीढ़ी का खेल

उद्देश्य :

समुदाय को शामलात संसाधनों की सुरक्षा, संरक्षण, विकास एवं प्रबंधन को लेकर वर्तमान स्थिति का आकलन करते हुए बेहतरी के प्रयास के लिए प्रेरित करना ।

सांप सीढ़ी गैम एक सहभागी प्रक्रिया है, जिसमें भाग लेने वाले लोग अपने स्थानीय जल स्त्रोतों व शामलात संसाधनों का विश्लेषण करते हैं, उनके विकास, प्रबंधन से लाभ-हानि को समझते हैं, इनसे संबंधित कानूनी प्रावधानों को जानते हैं, एवं अपने गांव की तुलना करते हैं, प्रतिक्रियाएं देते हैं। खेल के दौरान शामलात संसाधनों के संरक्षण, सुरक्षा, विकास एवं प्रबंधन संबंधी मुद्दे सामने आते हैं तथा उनको हल करने के लिए योजना व लक्ष्य निर्धारण में सहयोग मिलेगा।

सामग्री :

1. सांप सीढ़ी
2. खेलने वाला पासा (चार खानों वाली गोटी जिस पर डॉट में एक से छः तक की नंबरिंग हो)
3. समूहों की अपनी गोटी जिसे नंबर के आधार पर आगे बढ़ाना है। चारों समूहों की अलग-अलग प्रकार की हो। पत्थर या कोई वस्तु का उपयोग कर सकते हैं।
4. चार्ट
5. मार्कर
6. दो संदर्भ व्यक्ति। एक फैस्लीटेटर, एक लिखने वाला।

फैस्लीटेटर की भूमिका :

इस गैम के माध्यम से स्थिति आकलन के साथ-साथ निर्णायक स्थिति तक पहुंचाने में फैसलीटेटर की पर्वू तैयारी एवं गैम के दौरान सक्रियता अतिआवश्यक है। खेल के दौरान जब भी गोटी सीढ़ी अथवा सांप वाले खाने में आती है, उस समूह के किसी सदस्य को उसमें लिखे संदेश को पढ़ना है तथा संभागियों को समझाना है। संदेश की तुलना अपने गांव के संसाधनों से करना। अच्छी या खराब, दोनों स्थितियां सीखने के लिए महत्वपूर्ण है। लेकिन यह स्थिति क्यों बनी, क्या कारण रहे, कैसे करते हैं या करेंगे आदि सवाल पूछ कर मुद्दे की गहराई तक जाना आवश्यक है। गैम समाप्त होने के बाद स्थिति में बदलाव के मुद्दों पर कार्यवाही का नियोजन बनाना जरुरी है।

फैस्लीटेटर पहले से कुछ सवालों की लिस्ट बनालें, ताकि फैस्लीटेशन में मदद मिल सके।

सहयोगी साथी को एक चार्ट पर नंबर एवं दूसरे वाले चार्ट पर मुद्दे लिखने हैं।

खेल के नियम :

1. पासे में 1 अथवा 6 अंक आने पर समूह की गोटी आगे बढ़ेगी।
2. 6 अंक आने पर समूह को एक बार और पासा फेंकने का मौका मिलेगा।
3. पासे को हवा में घुमाते हुए फेंकना है।
4. सीढ़ी अथवा सांप आने वाले समूह को संदेश पढ़कर सभी को समझाना है।
5. जो समूह समझा रहा है, उसके बाद जिस समूह की बारी है, वह समूह समझाने वाले समूह को 10 में से अंक देगा। समूह संदेश को कितना स्पष्ट समझा पाया है, उसके आधार पर नंबर देना है।
6. अगर वह समूह संदेश को ठीक से नहीं समझा पाया है, तो उसके बाद नंबर देने वाला समूह समझाएगा तथा उसके बाद वाला समूह नंबर देगा। इसी प्रक्रिया से गैम को आगे बढ़ाते रहना है।

प्रक्रिया :

- चार समूह बनाना जो, गैम को आगे बढ़ाएंगे। अगर लोग कम हैं, तो दो समूह भी बनाए जा सकते हैं।
- समूहों को सांप सीढ़ी के चारों तरफ बैठने के लिए कहना।
- समूहों को खेल के बारे में बताना है। खेल के नियम बताना।
- पहचान के लिए समूहों को नाम अथवा नंबर देना।
- चारों समूहों के नंबर लिखने के लिए एक चार्ट लगाना।
- दूसरे चार्ट पर खेल प्रक्रिया से निकले मुद्दों को लिखना।

एक चार्ट पर समूह को दिए गए नंबर तथा दूसरे पर खेल के दौरान उभर कर आए मुद्दे लिखने है।

चार्ट : 1

राउंड	10 में से दिए जाने वाले अंक			
	समूह 1	समूह 2	समूह 3	समूह 4

चार्ट : 2

मुद्दे

जिस समूह के सांप अथवा सीढ़ी का अवसर आएगा, उस बॉक्स में संदेश लिखा होगा।

सीढ़ी का अवसर मिलने पर : सीढ़ी नीचे से ऊपर जाती है यह उन्नति, प्रगति का प्रतीक है। इसमें सकारात्मक संदेश होता है। सीढ़ी आने पर पहले नीचे लिखा संदेश पढ़ कर सुनाना है। इस अच्छे संदेश का क्या परिणाम है, सीढ़ी के ऊपर वाले बॉक्स में लिखा है। संदेश पढ़कर सभी को समझाना है। जिस समूह की अगली चाल आएगी, वह संदेश समझाने वाले समूह को समझाने के

आधार पर 10 में से अंक देंगे।

अगर पहला समूह ठीक से नहीं समझा पाया, तो उस संदेश को स्पष्ट करेगा तथा उसके बाद जिस समूह की चाल होगी, वह नंबर देगा। यह स्पष्टता होने के बाद खेल को फिर से आगे बढ़ना है।

सांप आने पर:

इसी प्रकार सांप ऊपर से नीचे ले जाता है। सांप के मुंह वाले बॉक्स में कुछ नकारात्मक अथवा गलत व्यवहार वाला संदेश होगा तथा उसकी पूंछ वाले बॉक्स में उसका क्या परिणाम होता है, लिखा होगा। जिस समूह के सांप वाला बॉक्स आया है, वह पहले सांप के मुंह वाला संदेश पढ़कर सुनाएगा तथा पूंछ वाले संदेश को मिलाते हुए संभागियों की समझ बनाएगा। दोनों ही अवसरों में नंबर देने की प्रक्रिया एक ही रहेगी।

ध्यान देने वाली बातें :

अक्सर खेल में शामिल संभागियों का ध्यान हार-जीत की प्रतिस्पर्धा में केंद्रित हो जाता है। इस खेल का मुख्य उद्देश्य शामलात संसाधनों के संबंध में समुदाय के व्यवहार संबंधी संदेश मुख्य हैं। अतः फैस्लीटेटर को अपना फोकस संदेश पर रखना है।

संभागी खेल में जो भी संदेश समझे हैं, उससे संबंधित व्यवहार या कार्यवाही की उनके अपने गांव में क्या स्थिति है, इस पर सवाल पूछना तथा उत्तर को मुद्दे वाले चार्ट पर लिखना है।

उदाहरण :

सीढ़ी के नीचे वाले बॉक्स में लिखा है, गांव में ग्राम चारागाह विकास समित गठित है, और सीढ़ी के ऊपर वाले बॉक्स में लिखा है, गांव के चारागाहों से समुदाय को पर्याप्त चारा उपलब्ध होता है। संभागियों से पूछना है, उनके गांव में क्या स्थिति है। क्या ग्राम चारागाह विकास समिति बनी है। सभी को सदस्यों की जानकारी है। क्या आपके गांव के चारागाह से पर्याप्त चारा मिलता है।

सांप वाले बॉक्स में भी कुछ विपरीत संदेश लिख हुए हैं। उन पर भी इसी प्रकार से सवाल पूछने हैं।

इस प्रकार के सवाल पूछने पर वह अपने गांव की वास्तविक स्थिति प्रकट करेंगे। इससे कुछ मुद्दे निकलेंगे, जिनको मुद्दे वाले चार्ट पर लिखना है।

समापन :

जो समूह जीत तक पहुंच जाए, उसके लिए तालियां बजाएं। खेल लोगों की रुचि तक चलाया जा सकता है। समापन के बाद समूहों को कितने अंक प्राप्त हुए, पढ़कर सुनाना।

लोगों से सवाल पूछें, यह खेल कैसा लगा, क्या सीख बनी। लोगों की प्रतिक्रियाओं को लिखें।

खेल के दौरान मुद्दे निकले उन पर चर्चा करना एवं समाधान का नियोजन बनाना। नियोजन स्पष्ट हो, समाधान के लिए हम क्या करेंगे, कब करेंगे, कैसे व कौन जिम्मेदारी ले रहे हैं।

अंतर ढूंढ़ो, कारण जानो, सुधार के बिंदु पहचानो, बदलाव के कार्य तय करो

यहां दो चित्र दिए गए हैं। दोनों में अंतर है, संभागियों को अंतर पहचानने हैं।

जो जितने अंतर पहचानेगा, वह आज का विजेता बनेगा। परिणाम जानने के लिए एक चार्ट लगाएं तथा अंतर बताने वालों के नाम लिखें-

संभागी नाम	अंतर बताने की संख्या	कुल अंक

दोनों चित्रों में तालाब दिख रहा है, तथा बाकी सभी चीजें तालाब से पोषित होती दिखाई दे रही है। चारागाह हराभरा है। तालाब व चारागाह हमारे पर्यावरण, जैव विविधता से कैसे जुड़ा हुआ है, चर्चा करें।

दोनों ही चित्रों में अच्छी या खराब स्थिति दिखाई दे रही है। इसके कारण भी दिखाई दे रहे हैं। संभागियों से दोनों ही स्थितियां किन कारणों से बनी है, इस पर चर्चा करें व उनके विचार चार्ट या बोर्ड पर लिखें-

अच्छी स्थिति के सूचक	कारण

खराब स्थिति के सूचक	कारण

संभागियों से पूछें, आपको इन दोनों में से कौनसा चित्र पसंद है और क्यों ?

दोनों चित्रों से आप अपने गांव के संसाधनों को कौनसे चित्र जैसा देखना पसंद करेंगे ?

आप के गांव के जल स्त्रोतों, ओरण, गौचर की स्थिति इन दोनों चित्रों में से कौनसे चित्र से मेल खाती है।

आप ने जो चित्र पसंद किया है, अपने गांव के शामलात संसाधनों को पसंद जैसा बनाने के लिए स्वयं क्या करेंगे ?

मिल कर क्या करेंगे। जो करना तय किया है, उसे समय में बांध कर नियोजन करना।

संभागी या टीम का नाम	स्थिति को बदलने के लिए स्वयं क्या करेंगे	समुदाय स्तर पर क्या करेंगे

सरहद भ्रमण

पुराने समय में नई पीढ़ी को स्थानीय परिवेश, प्राकृतिक व शामलात संसाधनों, वनस्पतियों, जीव-जंतुओं एवं उनके साथ जीवन के साथ जुड़ाव के ज्ञान हस्तांतरण की कार्य आधारित औपचारिक प्रक्रिया थी। वयस्क व बुजुर्ग गांव के शामलात संसाधनों को उपयोगी बनाए रखने के लिए समयबद्ध सामूहिक कार्य करते थे, जिसमें नई पीढ़ी साथ में जुड़ती थी। दादा के साथ पुत्र, पौत्र, सास के साथ बहु-बेटियां जुड़ती थी एवं नई पीढ़ी अपने पूर्वजों से पारंपरिक जल स्त्रोतों के विकास एवं प्रबंधन, वनस्पतियों के नाम एवं उपयोग, जीव-जंतुओं के नाम एवं स्थानीय परिवेश में उनका महत्व आदि के बारे में जानते थे। मानसून से पूर्व जल स्त्रोतों के कैचमेंट में भ्रमण कर, पानी आवागमन की रुकावटों को ठीक करते थे। कई कारणों से यह सिलसिला टूट गया। परिणाम स्वरूप नई पीढ़ी को अपने स्थानीय परिवेश के बारे में ज्ञान बहुत कम रह गया है। कुछ वनस्पतियां, जीव-जंतु या तो कम हो गये या विलुप्त हो गए, उनकी पहचान भी नहीं रही।

उद्देश्य :

1. सहभागी जल विभाजन परंपरा पर समझ बनाएंगे।
2. सहभागी जल विभाजन क्षेत्र के आधार पर वर्षा जल संग्रहण के पारंपरिक तरीकों को समझेंगे।
3. जल विभाजन क्षेत्र एवं वर्षा जल संग्रहण के पारंपरिक स्त्रोतों की स्थिति तथा कारणों पर चर्चा कर पाएंगे।
4. सहभागी अपने जल विभाजन क्षेत्र के स्वास्थ्य में सकारात्मक उपायों पर चर्चा करेंगे।

सामग्री :

फ्लिप चार्ट व मार्कर अथवा बोर्ड तथा चोक। स्केच पैन का सैट, कैंची, गोंद, पारंपरिक जल स्त्रोतों पर हैंडआउट

प्रक्रिया :

1. सहभागियों से पूछें कि क्या वे अपने गांव के सबसे ऊंचे स्थान से परिचित हैं।
2. विद्यार्थियों को उस जगह ले जाएं।
3. गोल घेरे में सहभागियों को खड़ा कर पूछें कि बरसात में यहां गिरने वाला पानी किधर-किधर जाता है।
4. जितनी दिशाओं में पानी बहकर जाता है, सहभागियों को उतने समूह में बांट लें।
5. हर समूह के साथ एक सहायक शिक्षक तथा गांव के बुजुर्ग, जानकार व्यक्ति हों।
6. सभी समूहों को बताएं कि वे पानी बहने की दिशा में आधे घंटे तक जाएंगे। साथ में जाने वाले शिक्षक समय का ध्यान रखेंगे। ठीक आधे घंटे बाद विद्यालय आने के लिए मुड़ जाएंगे।
7. सभी समूहों को बताएं कि अपने रास्ते और आस-पास की चीजों को ध्यान से देखें। वापस आकर उसे नक्शे पर उतारेंगे। रास्ते में जहां भी जल स्त्रोत दिखे, उसके संबंध में निम्न लिखित जानकारी लें -

- जल स्त्रोत का नाम
- इतिहास (कब बना, कैसे बनाया, किसने बनाया)?
- स्त्रोत में पानी कहां से आता है?
- पानी का उपयोग कैसे होता है?
- आज स्त्रोत की क्या स्थिति है?
- पहले और अब में स्त्रोत के उपयोग में क्या फर्क आया है। यह फर्क आने के कारण क्या हो सकते हैं। इस जानकारी के लिए वे शिक्षक व बुजुर्ग जन की मदद जरूर लें।

8. समूहों से यह भी कहें कि रास्ते में उन्हें जितनी वनस्पति अथवा प्राणी दिखें, उन्हें दर्शाने के लिए स्मृति चिन्ह ले आएं। जैसे खेजड़ी का पत्ता, मोर का पंख, हिरण के पदचिन्ह इत्यादि।

9. समूहों को सूचित करें कि जो सबसे ज्यादा जानकारी अथवा स्मृति चिन्ह लाएंगे, वे विजयी घोषित होंगे।

10. वापस आने के बाद हर समूह को एक चार्ट पैपर व कुछ स्केच पैन दें। अपने-अपने रास्ते का नजरी नक्शा बनाने के लिए 10 मिनट का समय दें।

11. हर समूह एक अलग चार्ट पेपर पर अपने स्मृति चिन्हों को चिपकाएं और लिखें कि वे क्या हैं।

12 हर समूह कक्षा कक्ष की अलग-अलग दीवारों पर नक्शा एवं स्मृति चिन्ह के चार्ट चिपकाएं।

13. समूहों को एक दूसरे की प्रदर्शनी देखने एवं चर्चा के लिए 10 मिनट का समय दें।

14. सबसे अच्छी प्रदर्शनी का चुनाव विद्यार्थी खुद वोट से करें। प्रोत्साहन सवरूप ताली बजाएं।

15. सभी समूह अपने जल स्त्रोतों पर एकत्रित जानकारी साझा करें।

16. हैंडआउट का उपयोग कर, आवश्यकता अनुसार शिक्षक जोड़ सकते हैं अथवा सवाल पूछ सकते हैं।

17 अंत में हमारे जल-जीवन में जन विभाजन क्षेत्र के महत्वपूर्ण योगदान पर चर्चा करें। समय के साथ क्या बदलाव आया है तथा उसका जन-जीवन पर क्या प्रभाव देख रहे हैं। सहभागियों से पूछें कि इनके संरक्षण एवं रखरखाव के लिए व्यक्तिगत रूप से वे क्या करना चाहेंगे।

18. समुदाय स्तर पर क्या करेंगे?

समापन पर शिक्षक सार प्रस्तुत करें एवं जो कार्य तय हुए हैं, उनकी विद्यार्थियों, गांव के लोगों को शपथ दिलाएं।

अगले पृष्ठों पर नमूने के तौर पर सारिणी दी गई है, जिससे जानकारी संकलित करने में मदद मिलेगी।

जल स्तोत्र का नाम :

गांव का नाम : **विद्यालय का नाम :**

सवाल	जवाब
कब बना	
किसने बनाया	
कैसे बना	
स्थान का चयन कैसे किया	
पानी आवक की सरहद कहां से कहां तक की है	
कितने समय तक पनी रुकता है	
उयोग कौन करते हैं / करते थे	
उपयोग कैसे करते हैं / करते थे	
वर्तमान में उपयोगिता को लेकर क्या स्थिति बनी है, और करण	
उपयोगी बनाए रखने की क्या परंपराएं रहीं है तथा वर्तमान में कौन सी प्रचलन में है	
प्रबंधन के नियम क्या हैं, तथा कौनसे नियम वर्तमान में लागू हैं।	
स्थानीय पर्यावरण जैव विविधता, परिस्थितिक तंत्र संतुलन, में जल स्त्रोत की क्या उपयोगिता है	

स्थानीय वनस्पति :

गांव का नाम : **विद्यालय का नाम :**

वनस्पति का नाम	वनस्पति के बारे में विवरण
स्थानीय नाम वैज्ञानिक नाम:	
पहचान चिन्ह पत्तों का आकार, टहनियां, पौध, वृक्ष, घास	
क्या–क्या उपयोग होता है	
भूमि कटाव, मिट्टी को उपजाऊ बनाने, जैव विविधता संरक्षण के अनुसार महत्व	

चारागाह, ओरण, गोचर भ्रमण :

गांव का नाम : विद्यालय का नाम :

चारागाह की पहचान	प्राप्त जानकारी का विवरण
चारागाह औरण, गौचर क्या है	
सरकार के राजस्व रिकॉर्ड में किस नाम से व कितना बीघा / हैक्टेयर है	
पंचायत के स्थाई संपत्ति रजिस्टर में किस नाम से दर्ज है।	
कितने प्रकार के पेड़, पौधे, घास का नाम लिखें	
लगभग एक बीघा का एरिया चयन करें व पेड़, पौधों की गणना, घास कितने प्रतिशत है। उसके हिसाब से कुल क्षेत्र का निकालें	
चारागाह में कितने जल स्त्रोत बने हैं	
वर्तमान में क्या उपयोग है, पशु किस अवधि तक चराई करते हैं, भरपूर चारा मिलता है	
बुजुर्गों से पूछें पहले और वर्तमान में चारागाह में क्या बदलाव आया है। कितने समय पहले की बात कह रहे हैं। क्षेत्र घटा है, ज्यादा हुआ है पेड़ पौधे, घास घटी है, ज्यादा हुई है	
इस बदलाव के कारण क्या हैं	
बदलाव आया है, तो क्या प्रभाव पड़ा है– पशु व्यवसाय पर पेड़–पौधों के संरक्षण पर जीव–जंतुओं पर पर्यावरण पर	
सुधार के लिए क्या कर सकते हैं	

इसी प्रकार संसाधन नक्शा में पहचाने गए सभी संसाधनों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

विद्यालय प्रधान किसी एक कक्षा-कक्ष को मरुस्थलीय पर्यावरण अध्ययनकेंद्र बनाकर यह जानकारी उसमें सजा सकते हैं।

मंथन या निबंधन लेखन प्रतियोगिता

थार रेगिस्तान एक सोने के अंडे देने वाली मुगी जैसा है

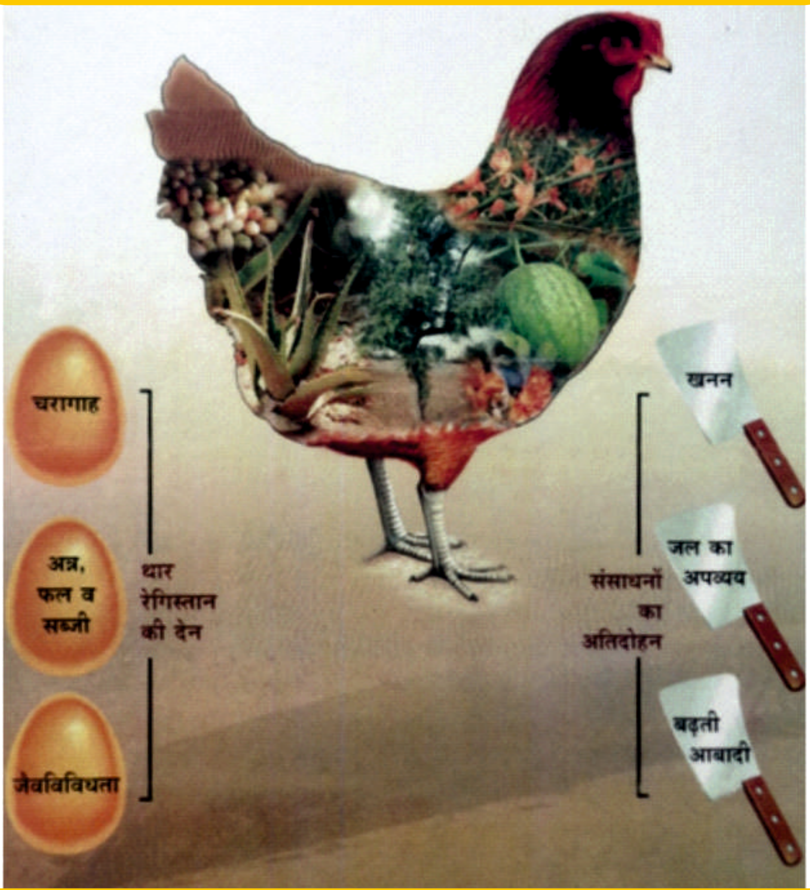

हम हर दिन सोने के अंडे चाहते है या केवल आज के लिए मुर्गी?

- इस चित्र को ध्यान से देखो और सूची बनाओ, चित्र में क्या दिख रहा है।
- इसमें लिखे हुए शब्दों को पढ़ो और समझो, क्या लिखा हुआ है, इसका अर्थ क्या है।
- क्या सचमुच मरुस्थल सोने का अंडा देने वाली मुर्गी है। हां, तो कैसे, विचार करो और लिखो।
- वर्तमान में आपके गांव के पारंपरिक जल स्त्रोत, नाडी, तालाब, बेरा, बेरी, चारागाह ओरण, गोचर में वनस्पति, जीव-जंतुओं की स्थिति को देख कर क्या कहेंगे ?
- हम रोज सोने का अंडा ले रहे हैं, या मुर्गी काट कर सारे अंडे एक साथ चाह रहे हैं
- अच्छा है, तो क्या है, खराब हुआ है, तो आपके विचार क्या-क्या कारण हैं।
- क्या इस स्थिति को बदला जा सकता है ? हां, तो कैसे

मरुधरा के पारंपरिक जल स्त्रोत

आज से सैकड़ों हजारों वर्ष पीछे जाकर रेगिस्तान में जीवन की कल्पना करो। हमारी छाती धक से बैठ जाएगी। दूर-दूर तक पसरी हुई रेत, तवे सा तपता दिन और पानी का नामो निशान नहीं। बिरले ही थे हमारे पूर्वज जो इस कठिन परिस्थिति में यहां आए, बसे और जीवन के तरीके बनाए। आज की तरह ना सड़कें, ना बिजली, ना फोन और ना ही पानी। धरा सूखी और पाताल का पानी खारा। लेकिन आ गए इस धरा पर, तो इसे अपना बना लिया। बाहरी लोग मरुस्थल की मौत से कल्पना करते थे। बाड़मेर जैसलमेर को तो काला पानी की सज्ञा दी जाती थी।

कहते हैं कभी यहां खारा समुद्र था। प्राकृतिक बदलाव के कारण समुद्र सूख गया और रेत का समुद्र बन गया। लेकिन रेत ने समुद्र का गुण नहीं छोड़ा। वही लहरें, वही हिलोरे। इन्सानों ने भी समुद्र की ललक नहीं छोड़ी। धरती पर ना सही, आकश में समुद्र है। वर्ष भर में पंद्रह से बीस दिन बादल बरसेंगे, पूरे तीन सौ पैंसठ दिन के पानी जुगाड़ करने की ठानी और एक के बाद एक पूरी धरा पर छोटे-छोटे समुद्र बना दिए, जिन्हें आज हम पारंपरिक जल स्त्रोत, नाडा, नाडी, तालाब, जोहड़, बेरी आदि नाम से जानते हैं।

पूर्वज जान गये थे, रेगिस्तान में जीवन चलाने के लिए बरसात के पानी रोक कर रखना जरूरी है। समस्त जीव जगत का जीवनयापन हो, यही सोच कर जल स्त्रोत बनाए, उनके स्थाईत्व, सुरक्षा, शुद्धता, और स्वच्छता के लिए प्रबंधन व्यवस्था बनाई। जल स्त्रोतों के आस-पास चारागाह बनाए। जल स्त्रोतों के कारण ही यहां पर सैकड़ों प्रकार के जीव-जंतुओं ने अपना ठिकाना बनाया। प्रवासी पक्षियों का आवागमन हुआ। थार मरुस्थल जीवंत हो गया।

अकाल व सूखा की बारंबारता मरुधरा की एक प्राकृतिक परिस्थिति रही है। अकाल, दुकाल, त्रिकाल, महाकाल जैसे शब्द जरुर सुने होंगे। जल, अन्न, चारा सबकुछ खत्म हो जाने पर गांव छोड़ कर उन इलाकों में पलायन करते थे, जहां जल, अन्न, चारा की कमी नहीं थी। लेकिन वर्षा के समाचार मिलते ही, वपास लौट आते अपनी जमीन पर।

आप कभी अपने गांव के तालाब, नाडा, नाडी, बेरी के पास जाओ और उसका अवलोकन करो। आपको तालाब किनारे कुछ पुराने खेजड़ी, जाल, कैर के पेड़ दिखेंगे। कुछ आयु के साथ खोखले हो गए। मंदिर, देवले, छतरियां दिखेंगी। पानी है, तो पक्षी दिखेंगे। खोखले पेड़ों में रात्रि को विचरण करने वाले उल्लू, चमगादड़ या छिपकली वंश के गोह, गोहिरा आदि भी मिलेंगे। पानी में झांक कर देखोगे, कुछ जीव तैरते दिखेंगे। ज्यादा शोर-शराबा नहीं हुआ, तो नील गाय, हरिण, खरगोश दिन में अन्यथा रात्रि में पानी पीने आएंगे। ग्वाले आएंगे, हमारे पालतू पशु भेड़ बकरियां, गाय, भैंस, ऊंट आएंगे। इनसे हमें कमाई होती है। कानों में तरह-तरह की आवाजें सुनाई देगी। हवा में नमी बनी रहेगी। हवा से नमी लेकर जीवित रहने वाली वनस्पतियां जीवित रहेंगी। इन सभी चीजों को मिलाकर मरुस्थल में एक परिस्थितिक तंत्र बना है, जिसमें हम जिवित रह पाते हैं। तालाब पर बैठ कर कल्पना करो। हमारे घर में नल से या टेंकर से पानी आ जाएगा, तालाब को हम भूल जाएंगे। लेकिन क्या रेगिस्तान में जीवंतता बच पाएगी।

आगे के अध्यायों में हम मरुस्थल के इन पारंपरिक जल स्त्रोतों का अध्ययन करेंगे। लेकिन अध्ययन की सार्थकता तभी साकार होगी जब हम किताब से बाहर निकल कर अपने गांव के तालाब का अध्ययन करेंगे। बुजुर्गो के पास बैठ कर उनसे उसके निर्माण और प्रबंधन पर चर्चा करेंगे। वर्तमान स्थिति और सुधार की संभावना पर सवाल पूछेंगे। कभी कभार टोली बनाकर तालाब की मिट्टी निकालेंगे, पाल को ठीक करेंगे। आगौर को साफ करेंगे।

बूंदों से भरा खजाना :

बड़ा हुआ तो तालाब

छोटा हुआ तो नाडा/नाडी

मरुधरा में तालाबों की एक लंबी श्रृंखला है जो इसके शुष्क और अभिशप्त होने की परिभाषा को बदल देती है। रेगिस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक रेत के धोरों के बीच समतल मैदान में एक-दो मील की दूरी पर ऐसे स्त्रोत दिख जाएंगे। बदलती बोलियों, अपभ्रंश होते शब्दों और आकार-प्रकार ने नाडा, नाडी, जोहड़, जोहड़ी और सागर नाम दिए। नाम अनेक हैं, पर कर्तव्य एक है। बरसात की बूंद-बूंद सहेज कर सागर बनाना।

अनुपम मिश्र ने अपनी पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' में ठीक लिखा है, ''सैकड़ों हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की, तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ों हजार बनती थी।''

हजारों सालों की अथक मेहनत की देन है यह तालाब जिनको यहां के समाज ने बनाया, सवांरा और संभाल कर अगली पीढ़ी को सौंपा है। यही कारण है कि रेगिस्तान पानी के लिए मोहताज नहीं मेहरबान रहा है।

यह जल स्त्रोत केवल पानी एकत्रित करने के संसाधन भर नहीं है। इन्हीं की उपस्थिति में थार पारिस्थितिक तंत्र बना है। जैव विविधता को संरक्षण मिला है। आज भी वन विभाग द्वारा जंगली जीव जंतुओं, पक्षियों की गणना इन जल स्त्रोतों के किनारों पर होती है।

तालाब कहां बनेगा इसकी पारख यंत्रों से नहीं, आंखों से होती थी। कितना समतल मैदान यानि आगौर है, कितना आगर यानि पानी सहेजने वाला घेरा बनेगा, कितनी लंबी, चौड़ी, ऊंची पाल बनेगी, अधिक पानी आया, तो कहां निकलेगा, कैसे साफ-सुथरा रहेगा और कैसे पानी का वितरण होगा, यह सारा काम योजनाबद्ध तरीके से होता आया है। यह अलग बात है, योजना कागजों पर नहीं, काम करने वाली हथेलियों पर बनती थी। पानी की जरूरत के अनुसार पक्के ताल वाली जगहों पर तालाब बनाए जाते थे जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक भरे रह सकें।

छोटा हो या बड़ा, बिना नाम का एक भी तालाब नहीं। कहीं बनवाने वाले के नाम पर, तो कहीं स्थान की विशेषता के नाम पर। और कुछ नहीं तो गांव के नाम के साथ जुड़कर नामकरण। गांव के नाम के साथ सर, सागर, नाडी और बेरी जैसे शब्द पानी और समाज को एकाकार कर देते हैं और मरुधरा में पानी निराकार हो जाता है।

पूवर्जो ने अपने श्रम से इन जल स्त्रोतों को बनाया है। जैसे-जैस पानी की तंगी आई, या तो पूर्व में तालाब की क्षमता बढ़ाते गए, या फिर नए स्त्रोत बनाते।

समय के साथ कुछ बदलाव आया है। पानी की वैकल्पिक व्यवस्था हुई है। कहीं पाइप लाइन, तो ट्यूबवैल से पानी सप्लाई होने लगी है। तालाब नाडों से भी अब ट्रेक्टर वाला पानी पहुंचा देता है। पारंपरिक जल स्त्रोतों की सुरक्षा, संरक्षण, विकास एवं प्रबंधन में कुछ कमी आई है जो मरुधरा के पर्यावरण, जैव विविधता एवं इक्कोतंत्र के लिए अच्छी बात नहीं है।

पारंपरिक जल स्त्रोतों का प्रबंधन :

समुदाय ने केवल जल स्त्रोतों का निर्माण ही नहीं किया, उनके संरक्षण, सुरक्षा, विकास और प्रबंधन के नियम भी बनाए। नियम तोड़ने वालों पर आर्थिक, सामाजिक दंड का प्रावधान किया। कुछ गांवों में यह नियम आज भी लागू हैं। वैसे तो अलग-अलग गांवों में अलग-अलग प्रकार के नियम व प्रबंधन व्यवस्था है, लेकिन इनको एक साथ जोड़ कर देखें तो निम्न हैं -

- टेंकर से पानी भरने पर पाबंदी, भरने पर जुर्माना।
- कुछ गांवों में निर्धारित समयावधि तक टेंकर भरने की छूट, टायर पानी में नहीं जाने की शर्त।
- ऊंट या बैल गाड़ी की टंकी से पानी ले जा सकते हैं। उनका पहिया पानी में नहीं डूबना चाहिए।
- तालाब में नहाने, कपड़ा धोने की मनाही, नियम तोड़ने पर जुर्माना।
- आगौर में शौच व गंदगी करने पर आर्थिक, समाजिक व सश्रम दंड।
- आगौर की जमीन पर कब्जा व मिट्‌टी खुदाई करना मना है। दंड गांव के लोग तय करते हैं।
- साल में एक बार बड़ा श्रमदान, हर घर से एक सदस्य का अना अनिवार्य अथवा एक श्रम दिवस की मजदूरी वसूलना।
- तालाब के किनारे, पाल पर शराब पीने की पाबंदी।
- तालाब, नाडी, बेरा, बेरी पर जूता, चप्पल लेकर चढ़ना मना।
- आगौर के पेड़ों को काटना, छांगना मना।
- पशुओं को पानी पिलाकर तालाब किनारे व आगौर में चराना, छांव में बिठाना मना।
- नियमों का पालन एवं तोड़ने वालों का ध्यान गांव के लोग रखते हैं, मुखियाओं को बताते हैं तथा तोड़ने वाले को गांव के बीच बुलाकर निर्णय करते हैं।

अभ्यास :

क्या आपके गांव में तालाब, नाडा, नाडी है ? अगर आपका उत्तर हां है, तो उसका भ्रमण करो, बुजुर्गो से अनुभव जानो, निम्न बिंदुओं के आधार पर निबंध लिखो-

1. कब बना, किसने बनाया, कैसे बनाया।
2. अनुमानित भराव क्षेत्र कितने वर्ग फुट या मीटर में है।
3. अनुमानित आगौर कितने बीघा या हैक्टेयर में है।
4. इसमें पानी कितने समय तक रुका रहता है।
5. पानी का क्या उपयोग होता है। लोग पानी कैसे लेकर जाते हैं।
6. तालाब को उपयोगी बनाने के लिए क्या-क्या नियम बने हैं, वर्तमान में कौनसे नियम पालन होते हैं।
7. बुजुर्गो से पूछें और जानें, पूर्व में और अब में तालाब की उपयोगिता, प्रबंधन व्यवस्था में क्या बदलाव आया है, और क्यों।

आप अपने तालाब को कैसा देखना चाहते हैं, संक्षिप्त में लिखें।

आप द्वारा संकलन की गई जानकारी को एक चार्ट पर लिख कर अपनी कक्षा में लगाएं।

बेरी या कुंई :

तालाब के तल में बनी बेरियां, तालाब का पानी समाप्त होने के बाद बेरियों में बरहोमास मिलता है पानी

मरुधरा में अलग-अलग स्थानों की भूमि की गहराई की बनावट को पहचान कर कूइयों, बेरियों का निर्माण किया गया है। गहराई कहीं कम, कहीं ज्यादा। नाम कहीं बेरी, तो कहीं कुंई। मरुस्थल में समुदाय पानी को तीन भागों में बांट कर उपयोग करता रहा है। नाडी, नाडा, तालाब और टांकों में जमीन की सतह पर एकत्रित किया गया पालर पाणी, सतह और पाता, के बीच बेरियों, कूइयों में सहेजा गया रेजवाणी पाणी और बेरों, कुओं का पाताली वाकल पानी। उपयोग के भी बारह महीनों के चरण तय हैं। पहले सतही, फिर कूइयों और अंत में बेरों का पानी।

जहां जमीन के अंदर 30 से 50 फुट नीचे खड़िया मिट्टी, कहीं जिप्सम तो कहीं मुल्तानी मिट्टी की एक लंबी-चौड़ी पट्टी है, वहां बेरियों का निर्माण होता है। बाड़मेर, जैसलमेर, चूरू और बीकानेर में यह पट्टी है, इस लिए ज्यादा संख्या में बेरियां मिलती है।

कुंआ खोदते समय लोगों को इस पट्टी का ज्ञान हुआ। दिन में कुआं खोदते और रात भर खड़िया मिट्टी के पास पानी एकत्रित हो जाता। अमृत सा मीठा। कुंए को तो खड़िया की परत तोड़ कर गहराई तक ले जाना था, लेकिन बेरी बनाने का ज्ञान कुंओं की गहराई से उपजा।

मरुधरा की मोटे कणों वाली मिट्टी बरसात होने के बाद आपस में चीपकती नहीं है। नम हो या फिर शुष्क, अपना स्थान नहीं छोड़ती। इसी कारण बरसात का पानी जमीन में उतरते देर नहीं लगती। नीचे खड़िया मिट्टी उसे पाताल के खारे पानी में मिलने से रोकती है। मिट्टी के कणों का यह अलगाव गर्मी को नीचे तक नहीं जाने देता और वाष्पीकरण से बचाव करता है।

जमीन का पानी रिस-रिस कर तीन-चार व्यास वाले घेरे में एकत्रित होता है। छोट व्यास इस लिए बनाते हैं कि गर्मी में वाष्पीकरण नहीं हो, और संकरी जगह में पानी अधिक एकत्रित होने से पानी निकालने के लिए रस्सी से बांध कर उतारा गया बर्तन डूब कर भर जाए। नाडे, तालाब का पानी समाप्त होने के बाद बेरियों के पानी उपयोग करते हैं। ऐसे स्थानों पर एक नहीं अनेकों बेरियों का निर्माण किया जाता है।

बेरियां सार्वजनिक भूमि पर बनाई जाती है। उपयोग कहीं सार्वजनिक है, तो कहीं व्यक्तिगत भी है। जाति के हिसाब से भी अलग-अलग बेरियां हैं। लेकिन पानी सभी का है। कोई एक व्यक्ति मनचाहे तरीके से उपयोग नहीं कर सकता। नई बेरी बनाने के लिए गांव के मुखियाओं की स्वीकृति लेनी होती है। स्वीकृति पानी के उपभोग का हिसाब लगाकर दी जाती है। मरुधरा में हजारों की संख्या में बेरियां हैं, जो आज भी लोगों के पीने का प्रमुख साधन है।

बेरियां मरुधरा में पानी की उपलब्धता की गारंटी है। लोग बताते है कि तीन वर्षों तक लगातार सूखा पड़े तब भी बेरियों से पीने योग्य पानी मिलता है।

अभ्यास :

1. क्या आपके गांव में बेरी है? कितनी बेरियां है?
2. क्या बेरियों में पानी है? अगर है, तो वर्तमान में किस हेतु उपयोग करते हैं? बुजुर्गों से पूर्व के बारे में जाने।
3. बुजुर्गों से पूछें बेरियां कैसे बनी, किसने बनाई, कैसे पता चलता कि यहां बेरी बन सकती है।

टांका, कुंड :

चूरू जिले में चूना पत्थर की चिनाई व पक्के आगौर वाले निर्मित पुराने मजबूत टांके आज भी उपयोगी हैं

अब सीमेंट के उपयोग से नए प्रकार के टांके बनाने का प्रचलन है

मरुधरा में टांके, कुंड पेयजल के प्रमुख स्त्रोत हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में साठ से सत्तर फीसदी पेयजल की उपलब्धता टांकों, कुंडों से होती है। टांका बरसात के पानी को एकत्रित करने वाला संसाधन है। अलग-अलग क्षेत्रों में उपलब्ध निर्माण सामग्री से भिन्न प्रकार के टांके बनाए जाते हैं। चूरू, सीकर जिले में चूने के गारे से पत्थर व ईट की चिनाई, चूने के प्लास्तर से टांके बने हैं। क्षेत्र की भूगर्भीय बनावट के आधार पर अलग-अलग साइज के बनते हैं। आमतौर पर 10 से 12 फुट गोलाई और गहराई वाले होते हैं। चूरू में चूना से बनने वाले टांके 20 से 25 फुट गोलाई, 30 से 40 फुट तक गहरे होते हैं। इनकी छत चूना व पत्थर से डोम तकनीक से बनी हैं। अंदर से चिनाई पत्थर, ईट से चूना अथवा सीमेंट के गारे से होती है।

आजकल सीमेंट, मूंगिया, रेती के मिश्रण से फर्मे से भी टांके बनने लगे है। तल को बजरी, कंकरीट, सीमेंट चूना के मिश्रण की छः ईच मोटी परत डाल व कूट कर पक्का किया जाता है। सीमेंट व चूने का प्लास्तर कर दीवारों को मजबूत किया जाता है ताकि पानी का रिसाव नहीं हो।

पत्थर की पट्टियों से ऊपर की छत बनाई जाती है। पुराने टांकों में डोम वाली छत भी बनाई जाती थी। पट्टी वाली छत को मजबूत करने के लिए सीमेंट, रेती, कंकरीट का मिश्रण डाला जाता है। पानी निकालने के लिए दो फुट का दरवाजा रखा जाता है।

आगौर कच्चा व पक्का दोनों प्रकार के बनाए जाते हैं। आगौर का आकार टांके के साइज और बरसात के औसत से तय होती है। आमतौर पर 20 फुट के घेरे वाला बनाया जाता है। टांके व्यक्तिगत व सार्वजनिक दोनों प्राकर के बनते हैं। सार्वजनिक टांके सामुदायिक भूमि में निर्मित होते हैं, एवं उपयोग भी सार्वजनिक होता है। सरकारी सेवा स्थलों में टांकों से पानी की पूर्ति होती है। टांके में एकत्रित पानी पीने के उपयोग में लेते हैं। चार से पांच सदस्यों वाले एक परिवार में 8 से 12 माह के पानी की व्यवस्था हो जाती है

मरुधरा में टांकों के महत्व को देखते हुए स्वैच्छिक संगठनों व अब सरकार ने महात्मा गांधी नरेगा में भूमिसुधार और जलसंग्रहण कार्यक्रम में टांका निर्माण के लिए सहयोग किया जाने लगा है। मरुधरा में टांका निर्माण से लोग पानी के लिए स्वावलंबी हैं।

सीकर व झुंनझुनू जिले में भूजल समाप्त होने पर पीने के पानी का संकट बढ़ गया। वहां पर अब लोग घर में टांका बनाकर उसे छत के साथ जोड़ रहे हैं।

रेगिस्तान का प्रसार :

हमारे क्षेत्र को थार का रेगिस्तान के नाम से जाना जाता है। यह विश्व का 17 वां सबसे बड़ा मरुस्थल व 9 वां सबसे गर्म उपोष्णीकटिबंधीय (गर्म जलवायु) मरुस्थल है। 77 हजार वर्ग मील भूभाग पर विस्तारित थार मरुस्थल का 85 प्रतिशत भाग भारत तथा 15 प्रतिशत भाग पाकिस्तान में है।

मरुस्थल में यह रेत चट्टानों के हवा से घर्षण व वर्षा के पानी से कटाव के कारण उत्पन्न हुई है। आपने हिमालय से पुरानी अरावली पर्वतमाला के बारे में पढ़ा होगा। कभी हिमालय जितनी ऊँचाई वाली इस पर्वतमाला के हजारों सालों की इस घर्षण प्रक्रिया से उत्पन्न छोटे कण हवा से उड़ कर यहाँ टीलों के रूप में जहां जमा हुए, वह थार मरुस्थल कहलाया।

हमारे मरुस्थल में रेत के लहरदार ऊंचे-नीचे टीले हैं। यह टीले कैसे बने और बनते हैं, इसके बारे में हमने पाठ्य पुस्तक में पढ़ा है। यह टीले जिन्हें हम स्थानीय भाषा में धोरे कहते हैं, हवा से मिट्टी के कटाव से बने हैं। तेज आंधियां चलती है, तब हम देखते हैं, रेत के रैले चलते हैं। हवा को जहां अवरोध आता है, वहां पर रेत जमा होकर टीले का निर्माण कर देती है।

जहां पर पेड़, पौधे, वनस्पतियां नहीं है,
हवा के साथ मिट्टी का कटाव होता है

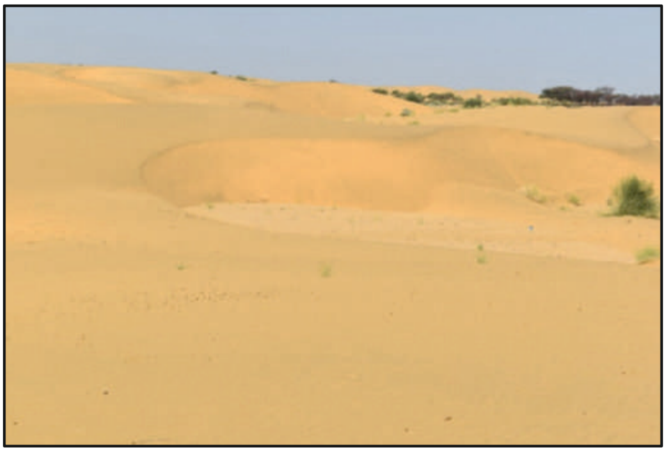

हवा के साथ उड़ कर रेत रुकावट वाले स्थान पर
जमा होती है, टीलों का निर्माण होता है

वैज्ञानिकों का कहना है कि रेगिस्तान का प्रसार बढ़ रहा है। इसके कई कारण बताए गये हैं। मुख्यतः खेती के तरीकों में आए बदलाव के कारण मिट्टी को रोकने वाली स्थानीय वनस्पतियां समाप्त होने, सड़क एवं अन्य निर्माण कार्य, ईंधन, चराई, खनन कार्य प्रमुख है। आज से 50 वर्ष पूर्व की स्थिति देखें, तो धोरों पर फोग, खींप, सिणिया, मोथ आदि घास बहुत होती थी, जो मिट्टी को बांधकर रखती थी। मिट्टी कटाव होने व नए धोरे बनने से कृषि योग्य जमीनें बंजर हो रही है।

विकास की प्रक्रिया एवं सुविधाओं के लिए उपकरणों के उपयोग ने मरुस्थल विस्तार व प्रसार को तेज कर दिया। भवनों, सड़कों एवं अन्य ढांचागत निर्माण के चलते खनन कार्य में तेजी, पर्वतमाला एवं मरुस्थल दोनों में वनस्पतियों के घटने से रेगिस्तान का फैलाव अधिक हो रहा है। यह धीरे-धीरे खेतों की उपजाऊ भूमि पर फैल रहे है जिससे उत्पादन कम हो रहा है।

रेगिस्तान के प्रसार को रोकने का प्राकृतिक तरीका वनस्पति से ढंका खेत व धोरे

खेतों व धोरों पर नैच्युरल मल्चिंग (कणाबंदी) कर वृक्षारोपण के द्वारा मिट्टी के कटाव को रोकना

हमारे पूर्वज भूमि कटाव और रोकने के तरीकों के बारे में जानते थे व इसे रोकने क प्रयास करते थे। जहां से मिट्टी का कटाव होता था, वहां कणाबंदी करते थे। धोरों पर से वनस्पति व पेड़ों को नहीं काटते थे। ट्रेक्टर से खेती विशेषतः तवी लगाने से स्थानीय वनस्पतियां समाप्त हो गई तथा मिट्टी का कटाव अधिक हो गया। जमीन के ऊपर चार-पांच इंच की परत वाली मिट्टी उपजाऊ होती है जो हवा के साथ उड़कर अन्य स्थानों पर चली जाती है। इस प्रकार अगर खेत में रेत का धोरा नहीं बना है, तब भी जमीन बंजर हो जाती है।

खेत में जहां रेत जमा होती है, वहां पर खेती करते हैं। खेती करने के बाद हवा चलती है, तो रेत के कारण उड़ जाते हैं तथा फसल की जड़ें बाहर निकल जाती है। इससे कुछ समय बाद फसल जल जाती है। स्थानीय बोली ऐसी जमीन को उडार कहते हैं।

अभ्यास :

1. आप अपने खेत में जाएं और दखें, कहां से मिट्टी का कटाव हो रहा है। उसे रोकने के प्रयास के लिए परिवार के बुजुर्गो से चर्चा करें।
2. क्या आपके खेत के आस-पास रेत का नया धोरा बना है। यह कब और कैसे बना, इस पर चर्चा करें।
3. अपने परिवार व गांव के बुजुर्ग व्यक्तियों से पूछें, रेत के धोरों पर पहले पेड़ पौधे ज्यादा थे, या अब। अगर अब कम हुए हैं, तो उसका कारण है तथा क्या असर पड़ा है।

मरुधरा में घास की प्रजातियां

उद्देश्य :

मरुधरा में विविध प्रकार के पेड़, पौधे एवं घास चारे की प्रजातियां पाई जाती हैं। लगभग 68 प्रकार की घास की प्रजाति रेगिस्तान में पहचानी गई है। हजारों सालों की अनुकूलन प्रक्रिया में यहां की वनस्पतियों ने अपने आप को जीवन चलाने में सक्षम बनाया है। विपरीत परिस्थितियों में सुरक्षित व संरक्षित रहने, बीज व वंश के अंश को बचाए रखने तथा अनुकूल वातावरण में फिर से जीवनक्रम चलाने के कारण ही यहां पर सैकड़ों प्रकार की घास-चारा, फल-फूल, औषद्यीय पौधों वाली प्रजातियां पाई जाती है। कुछ प्रजातियों का परिचय आगे के अध्यायों में दिया गया है। छात्र-छात्राएं अपने आस-पास के परिवेश की वनस्पतियों के बारे में जानें तथा उनका अध्ययन करें।

बच्चे आनंदित तरीके से केसे सीखें :

बच्चों को आस-पास के चारागाह, आगौर, ओरण आदि का भ्रमण कराएं तथा उनसे कहें, कि जो भी पेड़, पौधा या घास दिखे, उसका नमूना ले लें।

गांव की वनस्पति के बारे में जानने वाले कुछ बुजुर्गों को भ्रमण तथा विचार-विमर्श में साथ जोड़ें।

भ्रमण पूर्ण होने पर विद्यालय कक्ष में आएं तथा लाए गये नमूनों को हार्डशीट पर फेवीकोल से चिपकाएं। एक नमूना एक कार्डशीट पर चिपकाएं।

बुजुर्गो से वनस्पति का नाम, विशेषता, गुण व उपयोगिता के बारे में पूछें तथा हार्डशीट पर लिखें।

बाद में इन्हें कक्षाकक्ष में चिपकाया जा सकता है।

मरु स्थल में मुख्यतः तीन प्रकार के अनुकूलन वाली वनस्पतियां हैं-

1. अपनी जड़ों को पाताल तक ले जाती है, हवा में विद्यमान नमी को सोख लेती है। कम पनी में हरी-भरी रहती है।
2. जीवित रहने के लिए अपने भीतर पानी संरक्षित रखती है।
3. पानी की कमी, गर्मी व शुष्क वातावरण में सुप्तअवस्था में चली जाती है। नमी मिलने पर फिर से अंकुरित हो जाती है।

- छात्र-छात्राएं कैसे जानें? अपने आस-पास के पेड़ पौधों को देखें। कौनसे पेड़ या पौधे हैं, जो गर्मी के मौसम में भी हरे रहते हैं।
- कौनसे पेड़, पौधे व घास गर्मी व शुष्कता में सूख जाते हैं, हल्की सी नमी मिलने पर फिर हरे हो जाते हैं।
- कौनसे पौधे हैं, जिनमें भीषण गर्मी में भी तरल पदार्थ के रूप में पानी मिलता है।
- अपने दादा-दादी, नाना-नानी या गांव के बुजुर्गों से मरुधरा की वनस्पतियों, उनकी विशेषता एवं उपयोग के बारे में जानें।

स्थानीय नाम : सेवण घास

वैज्ञानिक नाम : लेसीयूरस सिंडिकस (Lasiurus Sindicus)

चारागाह में सेवण घास

सेवण घास बीज अवस्था में

सेवण मरुधरा की प्रमुख घास है जिसे सभी छोटे-बड़े पशु चाव से खाते हैं। इसे रेगिस्तान की सबसे पोष्टिक घास माना जाता है। थोड़ी बरसात व हल्की सी नमी से हरी होने वाली घास पौधे के रूप में पनपती है। पौधा एक बार स्थापित होने पर 20 वर्ष तक चारा देता है। ऊपर से कटाई करने या पशुओं द्वारा चरने के कुछ दिनों बाद फिर से पत्तियां हरी हो जाती है। रेगिस्तान में यह घास बीकानेर, जैसलमेर व बाड़मेर जिले में अधिक होती है।

सेवण 100 से 350 सेंटीमीटर बर्षा वाले क्षेत्र में उग जाती है। जून से दिसंबर तक हरी रहती है उसके बाद पकने लगती है और बीज आने लगते हैं। जनवरी से मार्च के बीच मावठ की बरसात होने पर फिर से हरी हो जाती है। कच्ची अवस्था में काट कर सूखे चारे के रूप भंडारण किया जा सकता है।

बीज हल्के तथा फूलों के क्वच में सुरक्षित होते हैं एवं हवा के साथ उड़ कर अपनी प्रजाति का फैलाव करते हैं। सूखे की स्थिति में बीज व पौधा सुप्त अवस्था में चला जाता है, तथा नमी मिलने पर अंकुरित हो जाता है।

इसका तना तिनके वाला व पत्तियां लंबाई में बढ़ती है। यह 1.2 से 1.5 मीटर तक लंबी बढ़ती है। अकाल के समय चारा संकट से बचाव के लिए समुदाय बड़े-बड़े बागर (भंडारण) बनाकर चारा सुरक्षित रखते हैं। वर्षा के पानी से बचा कर रखा जाए तो, चारा 3 से 5 साल तक उपयोगी बना रहता है।

सेवण घास की जड़ें भूमि में चार-पांच फीट गहरी होती है। सेवण घास भूमि के कटाव को रोकने एवं रेगिस्तान प्रसार को रोकने में बहुत कारगर है।

ट्रेक्टर से खेती होने तथा चारागाहों में बारहो मास चराई होने के कारण सेवण घास काफी कम हो गई है। खेतों में कणों पर कहीं-कहीं दिख जाती है। इसके कम या समाप्त होने से सबसे बड़ा नुकसान पोष्टिक चारे की कमी होना तथा रेगिस्तान का फैलाव बढ़ रहा है।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

1. बरसात के मौसम में अपने खेत, चारागाह में घूमें तथा सेवण घास के पौधे को पहचानें।
2. अपने माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, भेड़-बकरियां चराने वाले ग्वाले या बुजुर्गों से पूछें, क्या सेवण घास पहले की तुलना में कम हुई है?
3. कम होने के कारण को जानें।
4. उनसे पूछें, सेवण कम होने से चारे की कमी, पशुओं के पोषण, उनसे मिलने वाले दूध, घी की गुणवत्ता पर क्या प्रभाव पड़ा है। खेत से हवा के साथ मिट्टी का कटाव व नए धारों का बनना पहले से कम हुआ या अधिक?

स्थानीय नाम : धामण घास
वैज्ञानिक नाम: सेंचरस सिलियरीस (CENTURUS CILIARIS)

धामण घास

धामण के पीले व बैंगनी फूल

धामण मरुस्थल की प्रमुख सूखारोधि, कांटा रहित व पशुओं के लिए पोष्टिक घास है। यह 150 से 450 मिमि वर्षा वाले क्षेत्रों में हर प्रकार की भूमि में पाई जाती है। इसकी कई प्रजातियां है। मरुस्थल में मोडा धामण, काला धामण नामक प्रजाति पाई जाती है।

यह घास पौधे के रुप में विकसित होती है जिसे स्थानीय भाषा में बूजा कहते हैं। पौधा एक बार लगने के बाद कई वर्षो तक चारा देता है। वर्षा सीजन में हरा तथा बाकी समय सूखी अवस्था में रहता है। पशु सीधे भी चराई करते हैं तथा सूखने के बाद काट कर भंडारण किया जाता है। तिनके के साथ पत्तियां निकली होती है। पौधे की लंबाई 0.2 से 0.9 से.मी. व पत्तियों की लंबाई 10 से. मी. से 25 से.मी. होती है। पकने पर पीले व बैंगनी रंग के लंबे गौलाकार फूल लगते हैं जिनमें बीज बनता है। इसका प्रसार हवा तथा पशु-पक्षियों का द्वारा होता है।

धामण चारा उत्पादन के अतिरिक्त हवा से मिट्टी के कटाव को रोकती है। इसकी जड़ें जमीन में 140 सें.मी. तक पहुंच जाती है। जड़ें मिट्टी को बांध कर रखती है। भूमि को उपजाऊ बनाती है। हालांकि ट्रेक्टर से खेती और चारागाहों में चराई अधिक होने के कारण धामण घास का उत्पादन काफी कम हुआ है, फिर भी खेतों कणों पर व बंजर भूमि में इसके पौधे मिल जाते हैं। इसे फिर से लगने के लिए काजरी जोधपुर में बीज उपलब्ध है।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

1. बरसात के मौसम में अपने खेत, चारागाह में घूमें तथा धामण घास के पौधे को पहचानें। परिवार के बुजुर्गो का सहयोग लें।
2. अपने माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, भेड़-बकरियां चराने वाले ग्वाले या बुजुर्गो से पूछें, क्या धामण घास पहले की तुलना में कम हुई है?
3. कम होने के कारण को जानें।
4. उनसे पूछें, धामण घास कम होने से चारे की कमी, पशुओं के पोषण, उनसे मिलने वाले दूध, घी की गुणवत्ता पर क्या प्रभाव पड़ा है। खेत से हवा के साथ मिट्टी का कटाव व नए धारों का बनना पहले से कम हुआ या अधिक।

स्थानीय नाम : भुरट घास या भुंट

वनस्पतिक नामः सेन्क्रस बाईफ्लोरस (CENCHRUS BIFLORUS)

हरी व कच्ची अवस्था में भुरट घास

भुरट के कांटे

भुरट वर्षा ऋतु में उगने वाली खरपतवारी घास है। यह शुष्क व अर्द्धशुषक क्षेत्रों में पाई जाती है। मुख्यतः पश्चिम के थार रेगिस्तान में अधिक मात्रा में होती है।

सूखी अवस्था में भुरट घास

कच्ची अवस्था में पशु खाते हैं। पकने के पर बारीक कांटेदार झुमके में बीज पनपते हैं। सूल पतली व तीखी होती है जो सूखने के बाद चुभती है। सूखने के बाद इस घास के पौधे के पास से कोई गुजरता है, तो कांटे कपड़ों पर चिपक जाते हैं। उतारने पर बारीक नुकीले कांटे हाथों में चुभ जाते हैं। भेड़-बकरियों के बालों में भी चिपक जाते हैं। सूखने के बाद इसकी कुतर करके पशुओं को खिलाई जाती है। रोएदार कांटों के क्वच में बाजरे जैसे छोटे दाने बीज के रूप में सुरक्षित रहते हैं। हवा से उड़कर एक से दूसरे स्थान पर जाते हैं, तथा हल्की सी नमी मिलने पर अंकुरित हो जाते हैं। गांवों में लोग बताते हैं कि सवंत 1956 में भयंकर अकाल के समय खाने का अनाज नहीं था। लोग भूख से मरे थे। उस दौरान भुरट के कांटे एकत्रित कर इन्हें कूट कर बीज की रोटियां खा कर जान बचाई थी।

चराई के बाद इसकी जड़ें जमीन में रह जाती है तथा हवा से मिट्टी के कटाव को रोकती है। जमीन को उपजाऊ बनाती है।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

1. आपने अपने खेत में भुरट घास देखी होगी। इसके कांटे आपके कपड़ों पर भी चिपके होंगे। हाथों में भी चुभे होंगे तथा कांटा काडणी से सूलें निकाली होगी। आपको बुरा लगा होगा कि कुदरत ने हमें यह घास क्यों दी।
2. अपने माता पिता से पूछें, उन्होंने इस घास के बीज के बारे में क्या सुना है।
3. भुरट के कांटों को एकत्रित कर कूटें, बीज को देखें, पहचानें।
4. आपने कभी विचार किया कि मरुस्थल में अधिकांश वनस्पति कांटेदार क्यों है।
5. यह घास हमारे लिए कितनी उपयोगी है, उसे लिखें।

स्थानीय नाम : बूर घास

बूर घास के पौधे

बूर घास के फूल

यह रेगिस्तान में पाई जाने वाली सुगंधित घास है, जो बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर में पाई जाती है। गुच्छेदार जड़ें व लंबे तिनके वाली इस घास की सुगंध काफी दूर तक आती है। गाय भैंस खाती है, तो दूध में भी इसकी खूशबू आती है। मानसून सीजन में खेतों, मेड़, चारागाहों, बंजर रेतीली व पत्थरीली भूमियों में बहुतायत में होती है। पशु बड़े चाव से खाते हैं।

पुराने समय में पानी की कमी होती थी। टांकों या तालाबों में पानी की मात्रा कम होने पर उसमें बदबू आने लगती थी, तब बूर घास डाली जाती थी। पानी में बूर की खूशबू हो जाती थी। गणगौर पूजन के दौरान बाजरे के आटे के ढोकले बनाए जाते थे, उनमें बूर के तिनके डालते थे, जिससे ढोकलों में बूर की महक आने लगती थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में तिनके जोड़कर झाड़ू भी बनाते थे। पकने पर फूल आते हैं, जिनमें बीज सुरक्षित रहते हैं। बीजों का तेल औषधि में उपयोग होता है।

ट्रेक्टर से खेती का प्रचलन प्रारंभ होने के बाद से यह घास काफी कम हो गई तथा बहुत कम दिखाई देती है। इसकी जड़ें मजबूत व गुच्छेदार होती है, जो मिट्टी को बांध कर रखती है तथा रेगिस्तान का प्रसार रोकती है।

स्थानीय नाम : लांप, लांपी या लांपड़ी

वनस्पतिक नामः ऐरिस्टीडा डिप्रेसा (ARISTIDA DEPRESSA)

बोलचाल की भाषा में लांप, लांपी, लापड़ी के नाम से जानी जाने वाली एक वर्षीय घास है, जो शुष्क व कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। मरुस्थ में रेतीले व चट्टानी भू-भागों पर बहुतायत में होती है। इसका फैलाव सघन होता है तथा जमीन को पूरी तरह से ढंक देती है। मानसून सीजन में हरी अवस्था में धरती पर इस प्रकार फैल जाती है, मानो हरी चादर बिछाई हो।

लांप के एक पौधे में 8 से 10 तिनके निकलते हैं तथा दो से तीन फुट की लंबाई में बढ़ती है। हरी अवस्था में रेसा बहुत मुलायम होता तथा पशु खाते हैं। सूखने के बाद नुकीली सूलें निकल जाती है। उसके बाद पशु कम खाते हैं।

भूमि को पूरी तरह से ढंक लेने के कारण यह मिट्टी के कटाव को रोकती है। सूखने के बाद भी जड़ें, मिट्टी को बांध कर रखती है। सूखने के बाद सूक्ष्म जीव इसको पुनः मिट्टी में बदल देते हैं। इस प्रकार भूमि को उपजाऊ भी बनाती है।

अभ्यास :

- अपने खेत, ओरण, गोचर में जाकर लांप घास की पहचान करें।
- यह मिट्टी को कैसे बांध कर रखती है।

रेगिस्तान के प्रमुख वृक्ष

उद्देश्य :

प्रकृति ने मरुस्थल को बेशुमार वनस्पतिक संपदा दी है। जिस प्रकार से सर्वत्र पाई जाने वाली कुछ प्रमुख घास प्रजातियां हैं, उसी प्रकार रेगिस्तान के कुछ प्रमुख वृक्ष हैं जो जीवन संचालन, पर्यावरण संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। इन वृक्षों के बिना रेगिस्तान में जीवन व आजीविका चलाना संभव नहीं है। अध्ययनरत बच्चे इन वृक्षों, उनके महत्व के बारे में जान व समझ सकेंगे।

बच्चे समूह में चर्चा करें -

1. उन्होंने कौन-कौन से वृक्ष देखे हैं। उनका नाम, विशेषता व उपयोगिता क्या है ? इनसे हमें क्या मिलता है। समूह लीडर सभी के विचार लिखें। विचारों का संकलन कर कक्षा कक्ष में लगाएं।
2. सरहद भ्रमण के दौरान रेगिस्तान में पाए जाने वाले वृक्षों के नमूने एकत्रित कर जानकार लोगों के साथ चर्चा कराएं तथा उनका नाम, उपयोग के बारे में विस्तार से चर्चा कराएं।

आगे के अध्यायों में कुछ प्रमुख वृक्षों के बारे में अध्ययन करेंगे।

स्थानीय नाम : खेजड़ी, जांटी

वैज्ञानिक नाम : प्रोसोपिस सिनेरेरिया (PROSPIS CINERARIA)

खेजड़ी का वृक्ष

कांटेदार टहनी व पत्ते

फूल (मिमझर)

फलियां (सांगरी)

खोखे

कठोर छाल, बहुशाखीय छोटी पत्तियों, छोटे कठोर नुकीले कांटों वाला सदा हरा-भरा रहने वाला वृक्ष। खेजड़ी रेगिस्तान का जीनदायिनी वृक्ष है, इस लिए इसे बोलचाल की भाषा में रगिस्तान की तुलछी व कल्पवृक्ष भी कहा जाता है। संस्कृत में शमी का वृक्ष कहा जाता है।

इसकी पत्तियां पशु खाते हैं। लकड़ी ईंधन व शवदाह में काम ली जाती है। पहले झोंपों में सहतीर, किवाड़ी बनाने व इमारत में काम आती थी। फूल तथा फल अप्रेल-मई माह में आते हैं। हरे रंग की लंबी फलियां लगती है जिन्हें स्थानीय भाषा में सांगरी कहते हैं। सांगरी की सब्जी बनती है। सांगरी को सूखा कर रखते हैं तथा वर्षभर सब्जी बनाने में उपयोग ली जाती है। अचार भी बनता है।

महिलाएं खेजड़ी की पूजा करतीं हैं। टहनियां तथा पत्तियां पूजा, हवन आदि में उपयोग की जाती है।

राजस्थान में विश्नोई समुदाय के लोग खेजड़ी वृक्ष को नहीं काटते और ना ही काटने देते। जोधपुर के पास खेजड़ली गांव में सन 1730 में खेजड़ी वृक्ष को कटने से बचाने के लिए अमृतादेवी के नेतृत्व में 363 लोगों ने बलिदान दिया था। इसी से चिपको आंदोलन का नाम पड़ा था।

मरुधरा के लोग बताते हैं कि संवत 1956 में पड़े अकाल जिसे छप्पना अकाल के नाम से जाना जाता है, में खेजड़ी की छाल को कुट कर खाई थी, जान बचाई थी।

इसका औषधि में भी उपयोग होता है। गोद भी मिलता है। पत्तियों को सूखा कर चारे के रूप में काम में लेते है। भूमि कटाव को रोकती है, उपजाऊ बनाती है।

एक खेजड़ी का वृक्ष वर्ष भर में कम से कम तीन से पांच हजार की सांगरी व तीन हजार का पोष्टिक चारा कुल छःहजार रु. की गारंटीशुदा आय देता है। बरसात कम ज्यादा, समय से पहले, बाद में, अकाल, सूखा आदि परिस्थितियों में भी खेजड़ी उपज देती है। खेती में हमें बीज, खड़ाई आदि का खर्च करना पड़ता है। खेजड़ी से आय लेने के लिए हमें कुछ भी लागत नहीं लगानी पड़ती।

क्या आप जानते हैं, खेजड़ी में उदई नहीं लगती। स्थानीय कीट स्थानीय पेड़-पौधों से मित्रता रखते हैं।

जब से ट्रेक्टर से खेती होने लगी है तथा भेड़-बकरियां खुली चरने लगी है, तब से खेतों व चारागाहों में नए खेजड़ी के पेड़ नहीं पनप रहे हैं। केवल पुरने पेड़ खड़े हैं, जिनकी निर्धारित आयु है। अगर खेजड़ी के पौधों को संरक्षण व सुरक्षा नहीं मिलेगी, तो आने वाले समय में खेजड़ी समाप्त हो जाएगी।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

- एक खेजड़ी का पेड़ वर्ष भर में कितनी सांगरी, लूंख चारा, लकड़ी देता है, स्थानीय भाव से गणना करें। आपके खेत में कितने खेजड़ी के पेड़ हैं, तथा सालाना कितनी कमाई देते हैं।
- खेजड़ी के पेड़ से गारंटीशुदा आय होगी, तो कैसे ?
- क्या खेजड़ी के पेड़ के बिना जीवन संभव है ? नहीं तो क्यों ?
- आप अपने खेत में कितनी खेजड़ी के पेड़ ट्रेक्टर व पशुओं से बचाकर उनको पालेंगे, बड़ा करेंगे।

स्थानीय नाम : रोहिड़ा

वैज्ञानिक नाम : टेकेमेल उण्डुलेटा (TECOMELLA UNDULATA)

रोहिड़े का वृक्ष

रोहिड़े के पुष्प

रोहिड़ा शुष्क व अर्ध शुष्क जलवायु क्षेत्र में जीवन यापन करता है। मरुस्थल के बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानरे, जोधपुर, नागौर, जालौर, सिरोही, पाली, चूरु, सीकर, झुंझुनू जिले इसके ठाए ठिकाने हैं। थार रेगिस्तान के पाकिस्तान क्षेत्र के अलावा शुष्क, अर्ध शुष्कीय जल वायु वाले मैदानी और पहाड़ी क्षेत्र में भी पाया जाता है। अरब के रेगिस्तान में भी इस प्रजाति के पौधे पाए जाते हैं।

खास विशेषता है, इसके सुंदर व आकर्षक फूल। कुछ पौधों के वर्ष में एक बार तथा अधिकांश में वर्ष में दो बार फूल आते हैं। दिसंबर अंत से जनवरी के बीच तथा मार्च व अप्रेल में पीले, नारंगी व लाल रंग के फूलों से रेगिस्तान में रंग भर देता है। रेगिस्तान का श्रृंगार कर देता है। खुशबू रहित फूल देखने में काफी सुंदर और आकर्षक होते हैं।

फूलों के आने पर मधु मक्खियां, तितलियां और रसभक्षी रस चूसने के लिए इसके चारों तरफ मंडराते रहते हैं। यह कीट हमारी फसलों, फलों का परागण करते हैं। इस प्रकार जैव विविधता संतुलन को बनाए रखने में भी इस वृक्ष की रेगिस्तान में खास अहमियत है। चारे के रूप में फूलों को बकरी बड़े चाव से खाती है।

दूसरी विशेषता इसकी लकड़ी हैं। लकड़ी कठोर व मजबूत होती है। इसका उपयोग दरवाजों, खिड़कियों, चार पाई के पायों, फर्नीचर एवं कृषि औजारों के लिए किया जाता है। इसकी लकड़ी पर नक्काशी का काम भी होता है। पुराने महलों, हवेलियों में रोहिड़े की लकड़ी की कलात्मक वस्तुएं देखने को मिलती है। इसी लिए इस वृक्ष को बोल-चाल की भाषा में रेगिस्तान का शिशम कहते हैं।

इस वृक्ष की सूखा सहन करने की अपार क्षमता है। 150 एम.एम. से 500 एम.एम. बरसात तक वाले क्षेत्र में अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। रेगिस्तान में सूखा की बारंबरता के बावजूद पौध पतझड़ी मौसम को छोड़कर हरियाली से आच्छादित रहता है।

43 डिग्री से 48 और कई बार 50 डिग्री तक के तापमान को झेलते हुए हरा रहता है। न्यूनत शून्य व माइनस दो डिग्री तक के तापमान को सहन करने की क्षमता रखता है।

रोहिड़ा औषधीय उपयोग में भी महत्वपूर्ण है। इसकी सहायता से एग्जिमा तथा इसी प्रकार त्वचा रोगों व फोड़े-फुन्सियों के नियंत्रण वाली दवाओं के निर्माण में उपयोग होता है। गर्मी तथा पेशाब संबंधी रोगों की दवाओं में भी उपयोग होता है। लीवर संबंधी रोगों में विशेष गुणाकारी है तथा लीव-52 नामक औषधि में इसका उपयोग किया जाता है।

रोहिड़ा वृक्ष रागिस्तानी पौध है इस कारण इसकी जड़ें गहराई के साथ-साथ जमीन के ऊपरी भागों में जाल बिछा कर भोजन पानी ग्रहण करती है तथा साथ में रगिस्तान की मिट्टी को बांध कर रखती है, रेगिस्तान के प्रसार को रोकती है।

31 अक्टुबर 1983 को रोहिड़े के पुष्प को राज्य पुष्प घोषित किया गया था।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

1. रोहिड़े को रेगिस्तान का शिशम क्यों कहा जाता है?
2. रोहिड़े के वृक्ष का औषधि में क्या उपयोग है?
3. रेगिस्तान के लिए रोहिड़ा क्यों उपयोगी है?
4. रोहिड़े के पुष्प को कब राज्य पुष्प घोषित किया गया था?
5. रोहिड़ा वृक्ष की संपूर्ण उपयोगिता पर निबंध लिखें।

स्थानीय नाम : कूमटा

वैज्ञानिक नाम : अकेसिया सेनेगल (ACACIA SENEGAL)

कूमट का पेड़

हरी फलियां

हरे कूमट के बीज

सूखे कूमट के बीज

कूमट का गौंद

कूमट कांटेदार वृक्ष है। मुख्यरूप से मरुस्थलीय क्षेत्र में रेत के धोरों, चट्टानी मगरों व पहाड़ियों पर देखने को मिलता है। छोटी पत्तियां, छोटे सख्त नुकिले कांटे, तने की छाल पीलापन लिए सफेद रंग की होती है। यह अत्यधिक सूखारोधि वृक्ष है। यह शुष्क, अतिशुष्क क्षेत्रों में आसनी से पनपता है। फल-फूल जुलाई-अगस्त में आने लगते हैं तथा फलियों में चपटे हरे रंग के दाने आने लगते हैं। फलों को कुमटिया व हिलारिया भी कहते हैं। हरी अवस्था में सब्जी बनाते हैं। बाद में बीजों को सूखा कर रखते हैं तथा वर्ष भर देशी सब्जी बनाते हैं।

अत्यधिक गर्मी में शाखाओं से पत्ते झड़ जराते हैं तथा वर्षा होने पर फिर हरे हो जाते हैं। पत्ते व फलियां बकरियां खाती है। सांगरी, कैर, कूमटा, गूंदा व अमचूर की मिक्स सब्जी बनाई जाती है जिसे पंचकूटा कहते हैं।

इसका गोंद खाने में उत्तम माना जाता है। सर्दियों में इसके लड्डु बनाकर खाते हैं। गोंदपाक भी बनाया जाता है। औषधि में भी उपयोग होता है। ऐसा माना जाता है कि कूमट के गौंद के लड्डू बनाकर खाने से हड्डियां मजबूत होती है।

मुख्य बात यह है कि कूमट के फल, गौंद रसायनमुक्त प्राकृतिक उपज होने के कारण लोग इनका सेवन करना पसंद करते हैं।

लकड़ी बहुत पक्की व मजबूत होती है। पुराने समय में खीचड़ा कूटने के लिए औंखली का मूसल व फसल निकालने के लिए सोटे इसकी लकड़ी के बनाए जाते थे। हल तथा खेती के औजार भी इसकी मजबूत लकड़ी से बनाए जाते हैं।

पेड़ की उंचाई चार-पांच मीटर होती है। इसकी जड़े गहरी तथा लंबी होती है। यह मिट्‌टी को पकड़ कर रखती है तथा रेगिस्तान के प्रसार को रोकती है। कूमट के पेड़ धोरों को बंधकर रखते है। हवा के साथ उनको उड़ने नहीं देते। कूमट के फूल आने का समय खेती की उपज में फूल आने का समय होता है। कूमट परागण करने वाले जीवों को आकर्षित करता है, जिससे खेतों में पैदावार अच्छी होती है।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

क्या आपने कूमट का पेड़ देखा है। यह ज्यादा कहां पर लगता है।

कूमट के फूल किस रंग के आते हैं।

कूमट का पेड़ मरुस्थल के लिए क्यों महत्वपूर्ण है।

स्थानीय नाम : जाल

वैज्ञानिक नाम: साल्वाडोरा ओलिओइडेस (SALVADORA OLEOIDES)

जाल वृक्ष जमीन पर पौधे के रूप में फेलता है तथा वृक्ष के आकार में भी बढ़ता है।

जाल अधिक होने के कारण ही मरुस्थलीय जिले का नाम जालौर पड़ा। रेगिस्तान में यह कहीं पौधे के रूप में तो कहीं पेड़ के रूप में दिखता है। यह गर्म व शुष्क जलवायु में विशेतः क्षारीय भूमि में अधिक होता है। इस वृक्ष की विशेषता है कि यह सदैव हरा रहता है। इसकी लंबी, पतली गहरे हरे रंग की घनी पत्तियां होती है। शाखाएं जमीन पर झुकी हुई रहती है। इस वृक्ष की छांव काफी ठंडक देती है, इस लिए गर्मियों की लू में इन्सान व जीव-जंतु इसकी शरण लेते हैं। यह वृक्ष इतना गहरा होता है कि इस पर बैठे पक्षी आसनी से नहीं दिखते। पुराने वृक्षों के तने खोखले हो जाते हैं, जिनमें डेजर्ट उल्लू, गोह आदि अपना घर बनाते हैं। खरगोश, लौमड़ी, हरिण व मोर भी इस वृक्ष के नीचे सुरक्षित महसूस करते हैं। जाल जैव विधिता संरक्षण के लिए भी महत्वपूर्ण है।

जाल के फूल (मिमझर)

कच्चे फल पिल्लू

कच्चे फल पिल्लू

फूल मिमझर आने का समय मार्च-अप्रेल तथा मई से जुलाई की भीषण गर्मी में फल लगते हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में पिल्लू कहते हैं। पिल्लू को मरुधरा का मेवा भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि पिल्लू खाने से लू नहीं लगती। फल ताजे भी खाते हैं तथा सूखा कर भी रखते हैं। इसके फल रसायनिक खाद व कीटनाशक मुक्त प्राकृतिक उत्पाद है। पत्तियां बारहो मास हरी रहती है। पशुओं, विशेषतः बकरियों व ऊंटों का चारा है।

हरा होने के कारण इसके नीचे की मिट्टी में सूक्ष्म जीवों का निवास रहता है, जो नाइट्रजन फिक्सिंग करते हैं, मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। यह हवा से मिट्टी के कटाव को रोकता है, भू-संरक्षण करता है। इसके फल व फूल परागण करने वाले जीवों को आकर्षित करते हैं। इस प्रकार जाल का वृक्ष खेती एवं पशुपालन आधारित आजीविका में भी बेहद मददगार है। खेती में कीट प्रकोप को रोकने के लिए जैविक कीटनाशक पांच पत्ती घोल में जाल की पत्तियां भी काम आती है।

अभ्यास :

- क्या आपने जाल का पेड़ देखा है। कहां देखा, स्थान का नाम लिखें
- जाल का पेड़ सदैव हरा क्यों रहता है।
- क्या आपने जाल के पीलू खाए हैं। अपने परिवार के बुजुर्गो से जाल के पेड़ व पिलू की विशेषताओं पर बात करें तथा अपनी कक्षा व स्कूल के अन्य बच्चों को भी बताएं
- जाल हमारे जीवन, पर्यावरण, खेती और पशुपालन में कैसे मददगार है।

स्थानीय नाम : कैर

वैज्ञानिकः कैपरिस डेसिडुआ (Capparis Decidua)

झाड़ी आकार में कैर का पौधा

कैर के सुंदर फूल

कच्चे व पके कैर फल

पेड़ का आकार लिए कैर

कैर छोटे पत्ते व कांटेदार तिनकों वाली बहुशाखीय झाड़ी है। कहीं- कहीं यह वृक्ष के रूप में विकसित होता है। फूल व फल अप्रेल से जून के बीच आते हैं। लाल रंग के सुंदर फूल व हरे रंग के गोल फल लगते हैं जिन्हें कैर कहते हैं। कैर कड़वे होते हैं तथा नमक पानी, छाछ आदि से मीठा कर इसकी सब्जी बनाई जाती है। उबाल व सूखा कर वर्ष भर सब्जी बनाने के काम आता है। इसका अचार भी बनता है। यह पंचकूटा में शामिल है, जिसमें केर सांगरी, कूमटा, गूंदा और अमचूर को मिक्स कर सब्जी बनाते हैं। फल पकने पर लाल रंग के मीठे रसीले हो जाते हैं जिन्हें ढालू कहते हैं। इन्हें इन्सान, पशु, पक्षी सभी खाते हैं। हरे पत्तों व फलों को बकरियां भी खाती है।

केर की लकड़ी मे दीमक कम लगती है, इस लिए इसका का उपयोग झोंपा व मकान की कच्ची छत बनाने में किया जाता हैं। पुराने समय में बेरियों को ऊपर से बांधने के लिए भी उपयोग करते थे। कृषि औजार बनते हैं। ईंधन के लिए भी काम में लेते हैं। कैर का औषधि में भी उपयोग होता है।

कांटेदार झाड़ी होने के कारण यह हवा में हल्की सी नमी को सोख कर पानी की पूर्ति कर लेता है। तनो व जड़ों में पानी को रोकने की क्षमता होती है। यह बारहो मास हरा रहता है। झाड़ी नुमा पौधा होने के कारण यह जमीन पर फैला हुआ रहता है तथा हवा से मिट्‌टी के कटाव को रोकता है। जड़े नमी को बनाए रखती है तथा असंख्य सूक्ष्म जीव जड़ों में जमा रहते हैं जो बरसात होने पर भूमि में फैल जाते हैं तथा फसलों को लाभ पहुंचाते हैं।

इसके वर्ष में दो बार लाल रंग के सुंदर फूल व फल लगते हैं। यह रस चूसने वाले कीटों व पक्षियों को लंबे समय तक भोजन प्रदान

करता है। परागण करने वाले कीटों को संरक्षण देता है जिससे हमारी फसलों में परागण करने वाले जीव उपलब्ध रहते हैं।

खेती में कीट नियंत्रण के लिए बनाई जाने वाली जैविक दवा में इसकी पत्तियां भी उपयोगी है। कुछ लोग बताते हैं, कमर या किसी भी प्रकार का हड्डी संबंधी दर्द हो, तो कैर के जड़ों की मिट्टी बिछा कर दर्द वाले स्थान को उस पर लगकार रखने से दर्द दूर हो जाता है।

कैर के फल को स्वास्थ्य के लिए काफी गुणाकारी माना गया है। बाजार में इसकी दर 1000 से 1200 रु. किलो है। इसकी उपज में किसी भी प्रकार की रसानिक खाद व कीट नाशक का उपयोग नहीं होने के कारण भी महंगा बिकता है।

फल पकने पर चार-पांच की संख्या में बीज आते है। जानवर व पक्षी फलों को खाते हैं। बीजों का प्रसार जीवों द्वारा होता है।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

1. क्या आपके गांव में कैर की झाड़ियां है। अपने शिक्षक या माता-पिता के साथ कैर की झाड़ी के पास जाएं तथा उस पर मंडराने वाले जीवों की सूची बनाएं।
2. कैर के फूलों का रंग कैसा होता है?
3. यह कैसे मरुस्थल के लिए उपयोगी है। माता-पिता व बुजुर्गो से चर्चा कर उपयोग के बारे में लिखें।

मरुस्थल के पौधे

स्थानीय नाम : आक, आकड़ा

वैज्ञानिक नाम : कैलोट्रोपिस प्रोसेरा (CALOTROPIS PROCERA)

आक का पौधा

आक के फूल

आकडोडीया

आक के बीज

आक का पत्ता

आक पतले तने व बड़े पत्तों वाला पौधा जो सदैव हरा रहता है। कच्ची टहनियों व पत्तों को तोड़ने पर दूध जैसा तरल पदार्थ निकलता है। स्थानीय भाषा में इसे आक का दूध कहते हैं। आश्चर्य है कि भीषण गर्मी व लू में इसका तरल सूखता नहीं। अधिक सर्दी में पत्ते व तरल सूख जाता है। जैसा कि हमने पूर्व में पढ़ा है, रेगिस्तान में तीन प्रकार की वनस्पति है। एक, जो अपने भीतर पानी को बचाकर रखती है। दूसरी, जड़ें गहराई तक ले जाती है तथा हवा से नमी सोख लेती है, तीसरी, कम पानी के समय सुप्तअवस्था में चली जाती है। आक पहली श्रेणी का पौधा है, जो जीवित रहने के लिए अपने भीतर पानी बचा कर रखता है।

आक का दूध आंख में गिर जाए, तो आंखों की रोशनी मंद या पूर्णअंधता हो सकती है। यहां लोग सावधानी रखते हैं। लोगों का मानना है कि गलती से आंख में गिर भी जाए, तो फोग के पौधे के पत्तों का रस निकाल कर तुरंत आंख में डालने से ठीक होता है।

आक के पत्ते बकरियों का चारा है। हरे व सूखे पत्तों को बकरियां बड़े चाव से खाती है। टहनियां लंबी, पतली तथा पकने पर अंदर से खोखली हो जाती है। इन्हें काट कर ईंधन के लिए, घर के चारों तरफ फैनसिंग करने, झौंपा निर्माण में काम लेते हैं। पूर्व में आक की लकड़ी को पानी में भीगोकर उसका रेसा निकालते थे, ढेरिए से कात कर रस्सी बनाते थे। यह चारपाई बनाने, झौपों को बांधने आदि के काम में लेते थे। अब कपड़ों की वस्टेज कतरन से बनाने लगे हैं।

आक के फूल शिवजी की पूजा में चढ़ाए जाते हैं। सफेद-बैंगनी मिश्रित रंग के फूल बहुत सुंदर होते हैं। मई-जून में पकने के बाद कच्चे आम जैसे फल लगते हैं, जिन्हें आक डोडिया कहते हैं। इनमें बीज आते हैं। एक आक डोडिए में करीने से सजे सैकड़ों की संख्या में बीज बनते हैं। बीज मूलायम रुई जैसे रेसे में बंधे होते हैं जो सूखने के बाद हवा से उड़कर दूर-दूर तक फेल जाते हैं, नई

पौध का निर्माण करते हैं।

आक को वैसे जहरिला पौधा मानते हैं। लेकिन इसका उपयोग देशी औषधियां बनाने में होता है। आक के सूखे फूलों की बिक्री होती है तथा यह औषधि बनाने वाली फार्मेसी में जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह हवा से मिट्टी के कटाव को रोकता है तथा मरुस्थल के फैलाव को कम करता है। इसके पत्ते व टहनियां सूखने के बाद जल्दी सड़ जाते है। धरती में उपलब्ध सूक्ष्मजीव इसकी खाद बना देते हैं। इस प्रकार भूमि को उपजाऊ बनाने में भी आक का महत्वपूर्ण योगदान है।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

1. क्या आपके माता-पिता ने कभी आक के पास जाने अथवा उसके पत्ते तोड़ने से मना किया है? हां तो किस कारण से?

2. आपने आक के बीजों को हवा में उड़ते हुए देखा और कौनसे पौधों के बीज हवा में उड़ते हैं, लिखें।

3. आक मरुस्थल के पर्यावरण के लिए कितना जरूरी है, लिखें।

स्थानीय नाम : फोग
वैज्ञानिक नाम: कैलीगोनम पोलिगोनोइडस (Calligonum Polygonoides)

खेत की सीमा पर लगे फोग के पौधे

फूलों से भरपूर फोग

फोग का पौधा सुखारोधि है तथा ज्यादातर रेत के धोरां, खेत के कणों (सीमाओं) पर होता है। इसकी जड़ें टीवी केबल की तरह धोरों में दूर-दूर तक फैली रहती है। 30 से 40 फीट तक। टहनियां पतली होती है, लेकिन कुछ समय पश्चात मोटे ठूंठ में बदल जाती है। मुख्य जड़ें काफी मोटी होती है। गहराई में अधिकतम 10 से 12 फुट। फोग की विशेषता है कि यह गर्मी में भी हरा-भरा रहता है। मुख्यतः सात से आठ फीट बढ़वार करता है। नहीं काटने पर 10 से 12 फीट तक बढ़ जाता है। यह पौधा बारहो मास हरा रहने का मुख्य कारण, यह धोरों व रेतीली जगहों पर उगता है। रेत के मोटे कण वाले धोरे ऊपर से भले ही सूखे व गर्म हों, लेकिन भीतर नमी बचा कर रखते हैं। गर्मी अंदर तक नहीं जा पाती। रात में शीतल हो जाते हैं। फोग इस नमी को सोख कर पानी की पूर्ति कर लेता है।

फोग पतली तिनके जैसी पत्तियों वाली मजबूत झाड़ी है जो रेत के धोरों पर फैलाव लिए होती है। अप्रेल माह में इसके फूल आते हैं तथा पकेने पर बीज बनते हैं। फूलों को स्थानीय भाषा में फोगला कहते हैं। कच्चे फूल तोड़ कर लोग एकत्रित करते हैं तथा रायते में डालते हैं। फूलों का रस पक्षी व किट चूसते हैं। बीज आने पर हवा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ कर नए पौधे बनते हैं। बीजों को ऊंट बड़े चाव से खाते हैं। स्थानीय भाषा में उसे घिंटाल कहते हैं। ऊंट, बकरियों व जंगली जानवरों का चारा है। तिनकेदार पत्तियों को सूखा कर चारे के लिए रखते हैं, जिन्हें ल्हासू कहा जाता है। फल व फूलों में 18 प्रतिशत प्रोटीन व 71 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेड होने के कारण यह भरपूर ऊर्जा का स्त्रोत है। रेगिस्तान के अन्य पौधों की तरह फोग भी जैव विविधता को संरक्षण प्रदान करता है।

फोग की लकड़ी पुराने समय में झौंपों की दीवार, टाटी बनाने, बेरियों का घेरा बनाने में उपयोग लेते थे। ईंधन के रूप में उपयोग होता था। अकाल के समय में लोग इनको जड़ों सहित उखाड़ कर लकड़ियां शहरी क्षेत्र में ईंधन के लिए बेचते थे। एल.पी.जी. गैस आने के बाद शहरों में मांग कम हो गई है। ट्रेक्टर से खेती होने के कारण फोग भी लुप्त हो गए। बीकानेर जिले के बज्जू व श्री डूंगरगढ़ में फोग के पौधे देखने को मिलते हैं।

फोग के पौधे की जड़ें रेत के धोरों में दूर-दूर तक फैली रहती थी व धोरों का कटाव को रोकती है। इसकी कटाई कर लकड़ियां बेचने व ट्रेक्टर से खेती के कारण फोग के पौधो रेगिस्तान से धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं, जिसके कारण रेगिस्तान का प्रसार, भूमि का उपजाऊपन कम हो रहा है तथा जैव विविधता का भी नुकसान हो रहा है। विलुप्त होते फोग को संरक्षण प्रदान करने के लिए

इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेज (आई.यू.सी.एन.) की रेड डाटा बुक में दर्ज किया गया है।

बच्चों के अभ्यास के लिए :

1. क्या आपने अपने क्षेत्र में फोग का पौधा देखा है? अगर नहीं तो बुजुर्गो से इसके बारे में जाने कि यह किन कारणों से खत्म हो गया तथा इससे क्य नुकसान हुआ है।
2. फोग रेगिस्तान के फैलाव को कैसे रोकता था?
3. बुजुर्गो से चर्चा कर फोग की लकड़ी, फूल व पत्तियों के उपयोग के बारे में जानें, लिखें व अपने विद्यालय के बच्चों को भी बताएं।

स्थानीय नाम : खींप

वैज्ञानिक नामः लैप्टाडेनिया पायरोटेक्निका (Leptadenia Pyrotechnica)

खींप का पौधा

फूल की अवस्था

खींप की फलियां

खींप की रस्सी, डोरिया, छजबड़ी

खींप मरुस्थलीय सूखारोधि पौधा है। यह मिट्टी तथा रेतीली, सभी भूमियों में पाया जाता है। यह लंबे तिनकेदार झाड़ी है। पौधे के रूप में मूल जड़ से तिनकों का एक गुछा निकलता है। तिनकों के छोटी-छोटी पत्तियां लगती है। पौधा चार से पांच फीट बढ़ता है। कई जड़ों को मिलकार एकल जड़ तीन से चार फीट गहराई तक होती है। रेत से नमी सोख कर पानी की पूर्ति करता है। गर्मियों में हरा रहता है।

जुलाई-अगस्त में छोटे पीले रंग के फूल आते हैं तथा फलियां लगती है। फलियों को स्थानी भाषा में खिंपोली कहते हैं। कच्ची फली तोड़ने पर उसमें दूध जैसा तरल रस निकलता है। कच्ची फलियों की सब्जी बनाते हैं। जोड़ों में दर्द निवारण के लिए फलियों की सब्जी बहुत उपयोगी मानी जाती है।

औषद्यीय पौधा है। जोड़ों में दर्द निवारण के लिए देशी दवा बनाने में काम आता है। हरे तिनकों को कूट कर उसके रस को मवाद में फंसे कांटे अथवा नुकीली चीज को निकालने के लिए घाव पर लगाते हैं।

- गांवों में इसको सुखा कर झौंपे छजने के काम में लेते हैं। झाडू भी बनाते हैं। लंबे तिनकों को पानी में सड़ाकर रस्सी भी बनाते हैं। गीले तिनकों से भी रस्सी बनाते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में डोरिया व छजबड़ी कहते हैं। झौपों, पशुओं के छप्पर छजने के लिए भी काम आता है।

- रेत के टीलों व समतल रेतीले मैदानों में उगता हैं। हवा से मिट्टी के कटाव को रोक कर मरुस्थल प्रसार को रोकता है। इससे खेत की उपजाऊ मिट्टी संरक्षित होती है। फसलों व पौधों में कीट नियंत्रण के लिए बनाई जाने वाली देशी दवा में पांच पौधों की पत्तियों में खींप की पत्तियां भी बहुत उपयोगी है। सूखने के बाद तिनके जल्दी सड़ते हैं तथा खेत में खाद बन जाती है।

- फलियां पकने पर बीज बनते हैं। आक की तरह खींप के बीज भी रुईदार रेसों से चिपके रहते हैं। फलियां खुलती है, तब बीज हवा में उड़कर पुनः अंकुरित होते हैं।

स्थानीय नाम : बोरड़ी, पाला बोरड़ी, झाड़ी, झाड़की

वैज्ञानिक नाम : जिजिफस नुमुलारिया (Zizyphus Nummularia)

बोरड़ी का पौधा

खट्टे–मीठे रसीले बेर

मरुस्थलीय छोटी कांटेदार झाड़ी जिसे स्थानीय भाषा में बोरड़ी या पाले वाली बोरड़ी कहते हैं। कम पानी में जीवित रहती है। इसके पत्ते आगे से डार्क चमकदार तथा पीछला हिस्सा कम चमकीला खुददरा होता है। तेज धूप में यह पौधा अपने पत्तों को उल्टा कर लेता है, जिससे पानी का वाष्पीकरण कम हो। इसके अतिरिक्त मई से जून वाली गर्मी व लू के समय यह पौधा सुप्तअवस्था में अपने अस्तित्व को बचाता है।

पत्तों से बकरियों का पोष्टिक चारा मिलता है। सुखा कर भी रखते हैं। चारे को पाला कहते हैं। झाड़ी की कांटेदार लकड़ियों से खेत की बाड़ (नैच्युरल फैन्सिग) करते हैं। कई सारी टहनियों को मिलाकर बनाई गई झुरमुट को पाई या ढीरा कहते हैं। इसकी बाड़ के अंदर से छोटा जीव भी खेत में नहीं घुस पाता।

सितंबर-अक्टूबर माह में फूल तथा बाद में छोटे-छोटे फल लगते हैं। कच्चे रहने तक हरे तथा पकने पर लाल हो जाते हैं जो खट्टे-मीठे होते हैं। विटामिन सी से भरपूर। लोग इन्हें सूखा कर रखते हैं, तथा वर्ष भर खाते हैं।

- यह औषधीय पौधा है। इसकी जड़ की छाल के रस (अर्क) को स्थानीय भाषा में रांग कहते हैं। इसका उपयोग देशी उपचार में किया जाता है। इसकी लकड़ी काफी मजबूत होती है तथा किसान कृषि औजार में इसकी लकड़ी को काम लेते हैं। इसकी जड़ें भी गहरी तथा दूर तक फैलती है। हवा से मिट्टी का कटाव रोकती है तथा जमीन को उपजाऊ बनाती है।

- बीज का कवर कठोर होता है। इसका प्रसार भेड़-बकरियों व जंगली जानवरों से होता है। कठोर बीज को खाते हैं तथा गोबर मींगणी के साथ वापस निकलता है, तब अकुंरण होता है। वैज्ञानिक विधि में एसिड से छिलके को नरम करते हैं।

बोरड़ी मरुस्थल के लिए वरदान मानी जाती है। ऐसा पौधा जो हर प्रकार की परिस्थितियों में साथ देता है। मरुधरा की आरणों में बोरड़ी के पौधे ज्यादा हैं। जैसलमेर, नागौर, बीकानेर व बाड़मेर की ओरणों में वैसे तो किसी भी प्रकार के वृक्ष पर कुल्हाड़ी चलाना मना है। लेकिन बोरड़ी को काटना प्रतिबंधित है। यही कारण है कि झाड़ी व पौधे के रुप में पनपने वाली पाला बोरड़ी पेड़ के रुप में दिखती है।

पुरानी परंपरा के अनुसार भाई जब बहन का मामेरा, मायरा भरने जाता है, तब सबसे पहले बहन के गांव ससुराल की सीमा पर बोरड़ी के पौधे को चुनरी ओढ़ाता है, और दोहराता है, तुमने हमारी बहन को फल-फूल, चारा आदि देकर उसकी रक्षा की है, इस लिए चुनरी का पहला हक तेरा बनता है।

मरुधरा के जीव-जंतु

मरुस्थल में असंख्य जीव-जंतु, पशु-पक्षी पाए जाते हैं। कम पानी और अत्यधिक गर्मी के बावजूद कुदरत ने विविध प्रकार के प्राणियों की श्रृंखला बनाई है जिसे हम जैवविविधता के नाम से जानते हैं। पर्यावरण और जैवविविधता से मिलकर पारिस्थितिक तंत्र (इक्को सिस्टम) बनता है। हम इन्सान भी इसका एक हिस्सा हैं। इक्को सिस्टम संतुलित रूप से तभी काम करता है, जब पर्यावरण और जैव विविधता का संतुलन बना हुआ है। प्राकृतिक तौर पर यह संतुलन स्वचालित होता है। एक दूसरे पर निर्भरता एवं भोजन श्रृंखला ऐसी बनी होती है, जिससे संतुलन बना रहता है।

इस पुस्तक में दिए गये जाल के खेल से इसे आसानी से समझा जा सकता है।

मानव द्वारा कम मेहनत से अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए किए गए विकास में पर्यावरण व जैव विविधता संरक्षण को भूल जाने के कारण यह संतुलन बिगड़ा है।

यहां के जीवों ने भी मरुभूमि को सहर्ष स्वीकारा तथा अपने आप को परिस्थिति के अनुकूल बनाया। जमीन पर चलने व रेंगने वाले अधिकांश जीवों का रंग यहां की मिट्‌टी से मिलता है। इस कारण यह आसानी से दिखाई नहीं देते। कुदरत ने यह रंग देकर उनको सुरक्षा प्रदान की है।

कम पानी और अत्यधिक गर्मी से निजात पाने के लिए भी इन जीवों के अपने तरीके हैं। विषम परिस्थितियों में जीवित रहने वाले प्राणियों के लिए जीव विज्ञान की भाषा में जीरोकोल शब्द का प्रयोग किया जाता है। जीरोकोल उन प्राणियों के लिए प्रयोग होता है, जो पानी के वाष्पीकरण से बचते हैं तथा अपने शरीर में जल का संरक्षण करते हैं। ऐसे प्राणी पसीना नहीं छोड़ते तथा शरीर के तापमान को संतुलित बनाए रखते हैं। ऊंट इसका उदाहरण है। गिद्‌द अपने शरीर के तापमान को संतुलित करने के लिए आकाश में बहुत ऊंचाई में ठंडी हवाओं तक चले जाते हैं। हरिण के लिए कहावत है कि वह हवा से नमी सोख कर प्यास बुझा लेता है। कुछ जीव सदैव हरी रहने वाली वनस्पतियों को खाकर उनमें मौजूद पानी की मात्रा से प्यास बुझा लेते हैं, तो कुछ जीव पाताल में घर बनाकर रहते हैं। रात्रि में भोजन की खोज में बाहर निकलते हैं तथा सूर्योदय के साथ भूमि में नमी वाले स्थानों पर चले जाते हैं। प्राणियों की इस जीवन पद्धत्ति को अनुकूलनता कहते हैं। यह अनुकूलनता तभी संभव है, जब प्रकृति के साथ जरूरत से ज्यादा छेड़छाड़ नहीं हुई हो। अन्यथा यह जीव या तो स्थान छोड़ कर अन्य जगहों में चले जाते हैं, या इनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इन्सानों ने इनकी जीवन पद्धत्ति और संकट का पूर्वाभास इनकी आवाज, व्यवहार को पहचान कर पूर्वानुमान लगाना सीखा है।

मरुस्थल है, इसका अर्थ यह कतई नहीं है, कि यहां जलीय जीव नहीं रहते। मरुस्थलीय जल स्त्रोतों, तालाबों, झीलों के किनारे जाएंगे तो जलीय जानवर भी दिखेंगे। कुछ प्रवासी पक्षी भी आते हैं। इनमें जल,थल और नभ तीनों में विचरण करने वाले हैं। किंगफिशर मरुस्थलीय जीव नहीं है। यहां के लोग इसका नाम भी नहीं जानते। बाहरोमास पानी रहने वाले तालाबों के किनारे किंगफिशर दिखते हैं, जिन्होंने मरुधरा को अपना लिया। कुरजां (साइबेरियन क्रेन) ग्रेट फ्लेमिंगो मेहमान के रूप में आते हैं, कुछ समय रह कर वापस अपने देश लौट जाते हैं। मेंढ़क वर्षा के दिनों में खूब शोर मचाते हैं, बाकी समय जमीन में गहरे जाकर सुप्त अवस्था में चले जाते हैं।

मरुधरा में जैव विविधता पारंपरिक जल स्त्रोतों, ओरण, गौचर, चारागाहों के बिना संभव नहीं है। पूर्वज इस बात को भलीभांति जानते थे। किसी भी क्षेत्र के पर्यावरण एवं जैव विविधता के योग से परिस्थितिक तंत्र बनता है। इसी से खेती, पशुपालन एवं जीवन से जुड़ी अन्य जरूरतें पूरी होती है। इसी लिए उन्होंने इनकी प्रबंधन व्यवस्था बनाई थी। नियम बनाए, व उनको सख्ती से पालन कराते थे। जैसे-जैसे पारंपरिक जल स्त्रोतों, चारागाहों की देखभाल कम हुई, उनकी हालत बिगड़ी, जैव विविधता में टूटन आने लगी

है।

इस पुस्तक में ऐसे ही जीव-जंतुओं का परिचय दिया गया है, जिनकी संख्या कई कारणों से मरुधरा में कम हुई है, या पूरी तरह से समाप्त हो गई है। उन्नति द्वारा मरुस्थल के छः जिलों में मरुधरा में जल स्वावलंबन कार्यक्रम के तहत स्कूलों में किए गये पर्यावरण शिक्षण कार्यक्रम के दौरान बच्चों को इन जीवों के चित्र दिखा कर इनका नाम अथवा देखे जाने के बारे में पूछा गया तो, बच्चों को जानकारी नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ वनस्पतियों के सैंपल दिखा कर उनके नाम या उपयोग के बारे में पूछा गया, उसकी भी जानकारी बहुत सीमित मिली। फोग के पौधे का बच्चों ने केवल नाम ही सुना है, उसे देखा नहीं है। कुछ जीवों को टीवी या फोन के माध्यम से देखने की बात बच्चों ने बताई। यह पुस्तिका बच्चों को पर्यावरण व जीव-जगत के बारे में जानकारी बढ़ाएगी, विद्यार्थी उनके साथ जुड़ेंगे ऐसी अपेक्षा है।

स्थानीय नाम गिद्द, गिरज, गिरजां

जिप्सी इंडिकस प्रजाति

बीकानेर जिले के श्री डूंगरगढ़ में देख गये गिद्द

क्या आपने अपने गांव के आस-पास तालाब किनारे या चारागाह में गिद्द देखा है। शायद नई पीढ़ी ने सुना, पढ़ा या चित्रों में देखा होगा। पचास-साठ साल पहले तक प्रत्येक गांव में मृत पशुओं को डालने वाली जगहों, गांव की गौचर, ओरण या जंगल में तथा सुदूर आकाश उड़ते हुए गिद्द देखने को मिलते थे। लेकिन अब कुछ गिने-चुने स्थानों को छोड़कर गिद्द गायब हो गए।

शीतकाल में मरुधरा के बीकानेर व जैसलमेर में विभिन्न प्रजातियों के प्रवासी गिद्ध आते हैं, तथा गर्मी के मौसम में पुनः ठंडे स्थानों पर चले जाते हैं। कुछ स्थानीय प्रजातियां हर मौसम में स्थाई रूप से रहती है। भारत में पाई जाने वाली प्रजाति का वैज्ञानिक नाम नियोफ्रोन गिंगिनियेनस (Neophron Ginginanu) है। यह प्रजाति कुछ स्थानों पर सदैव देखने को मिलती है।

गिद्द मरे हुए पशुओं का मांस खाते थे एवं वातावरण को साफ रखते थे। गिद्दों की अलग-अलग प्रजातियां हैं। उन्नति द्वारा वर्ष 2019 से 2021 के बीच मरुस्थल के पांच जिलों में की गई शामलात शोध यात्रा के दौरान बीकानेर जिले के श्रीडूंगरगढ़ में कई प्रजाति गिद्द देख गए। जैसलमेर की ओरणों में कुछ गिद्द दिख जाते हैं। श्रीडूंगरढ़ में देखे गये गिद्द तीन प्रजाति के थे। इनमें जिप्स इंडिकस (Zyps Indicus) सिनेरिअस वल्चर (Cinereous Vulture) व इजिप्टियन वल्चर (Egyptian Vulture) थे। पूरे देश की तरह मरुस्थल में भी गिद्दों की संख्या काफी कम हो गई है तथा अब मृत पशुओं को ठिकाने लगाना समस्या बन गई। सड़कों के किनारे, गांवों में पशु मरे पड़े रहते हैं तथा इनके शरीर से निकलने वाली गैसें वातावरण को दुषित करती है।

वैसे तो गिद्दों की संख्या कम होने या कुछ क्षेत्रों में पूरी तरह से खत्म होने के कई कारण हैं। लेकिन मरुस्थल के पर्यावरण, पारिस्थितिक तंत्र में आया बदलाव भी एक कारण रहा है। अनुपयोगी हुए पारंपरिक जल स्त्रोत, चारागाहों में खत्म हुई हरियाली और प्रतिकूल वातावरण के कारण गिद्द यहां से पलायन कर गए।

गिद्दों की संख्या कम व कुछ स्थानों पर समाप्त होने के कारणों को जानने के लिए जीव विज्ञानियों ने कई अध्ययन किए। एक अध्ययन के अनुसार पशुओं को दी जाने वाली दर्द निवारक दवा डाइक्लो फेनाक के तत्व पशु के शरीर में रह जाते हैं तथा उनके मरने पर गिद्द उन्हें खाते हैं, तो उनके गुर्दे पर असर पड़ता है तथा गिद्दों की मौत हो जाती है। इसके अतिरिक्त खेती में रसायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं के उपयोग के कारण भी गिद्दों की संख्या कम हुई है। इनकी घटती संख्या को ध्यान में रखते हुए इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेज (आई.यू.सी.एन.) ने इनको संकटग्रस्त श्रेणी में रखा है।

स्थानीय नाम : कोचरी, उल्लू:

अंग्रेजी नाम : स्पोटेड आउल (Spoted Owl)

मरुस्थल में पारंपरिक जल स्त्रोतों के किनारे पुराने वृक्षों एवं रात्रि में भोजन की तलाश में उल्लू

रात्रि में विचरण करने वाला, किसानों का मित्र एवं प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने वाला उल्लू भी संकटग्रस्त प्राणी है। यह अधिकतर एकांत में तालाबों के किनारे पुराने पेड़ों के खोखले तनों, बंद पड़े कुओं, बेरियों, शमशान भूमि में उगे पेड़ों में रहते हैं। दिन में बहुत कम दिखाई देते हैं। क्यों कि उल्लू को दिन में कम दिखाई देता है। लेकिन लगातार घटती संख्या के कारण अब रात में भी कम दिखते हैं।

पारंपरिक जल स्त्रोतों, चारागाहों के विकास और प्रबंधन में आई कमी और उनके अनुपयोगी होने के कारण उल्लुओं को रहने का अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाने के कारण इनकी संख्या कम हो रही है। पुराने खोखले वृक्ष भी कम हो रहे हैं जहां उल्लू अपना घर बना सके। उल्लू दिन में बाहर नहीं निकलते क्यों कि कौवे व अन्य पक्षी उन पर हमला बोल देते हैं तथा मार भी देते हैं। पारिस्थितिकीय संतुलन में योगदान करने वाले इस प्राणी को अनुकूल वातावरण और संरक्षण नहीं मिल पाने के कारण इनकी जमात घट रही है।

उल्लू किसान का मित्र होता है। यह रात्रि में शिकार करता है तथा चूहे इसका पसंदीदा भोजन है। चूहों की संख्या को संतुलित रखने में सांप, बिल्ली के अतिरिक्त उल्लू की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह मांसाहारी जीव है तथा चूहों के अतिरिक्त छोटे पक्षियों व फसलों में नुकसान पहुंचाने वाले कीटों का भी रात्रि में शिकार करते हैं।

वैसे तो उल्लू को लेकर कई प्रकार की धारणाएं प्रचलित है। जादूटोना करने वाले इस पक्षी का शिकार करते हैं। भारतीय धर्मिक ग्रंथों में उल्लू को धन की देवी लक्ष्मी का वाहन बताया गया है। आम ग्रामीण समाज में उल्लू के बोलने की दिशा (दायें बोलने पर अच्छा व बायें बोलने पर अनिष्ट) का संकेत मानते हैं। घरों पर या आस-पास बोलने पर बुजुर्ग आवाज लगाकर उड़ाते हैं। घरों पर बोलना भी खराब माना जाता है। उल्लू को किसी अनहोनी घटना का पूर्वाभास होता है और वह अपनी भाषा में प्रकट करता है। बुजुर्ग इसकी भाषा को समझते थे तथा अच्छे-बुरे संकेतों को समझ कर सावधान हो जाते थे। शुभ अथवा अशुभ घटनाओं का पूर्वाभास कराने वाला उल्लू मानव के अनअपेक्षित प्राकृतिक हस्तक्षेप के दुष्परिणामों का आभास कराता होगा, जिसे समझने वाला आज कोई नहीं है। सोचने वाली बात है कि जब उल्लू ही नहीं बचेंगे, तो धनदेवी लक्ष्मी किस पर बैठकर घरों में समृद्धि लाएगी।

अभ्यास के लिए :

- क्या आपने अपने गांव में उल्लू देखा है।
- कब और कहां देखा।
- बुजुर्गों से पूछें कि उल्लू पहले ज्यादा थे या अब। पहले से कम हुए हैं, तो कारण भी जानें।
- उल्लू को संरक्षण देने के लिए हमें क्या करना होगा।

स्थानीय नाम नीलकंठ : (इंडियन रोल्लर व यूरोपियन रोल्लर)

वैज्ञानिक नाम : कोरेशियस बेन्गालेन्सिस (Coracias Benghalensis)

इंडियन रोल्लर

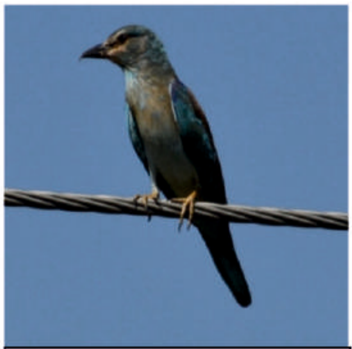

यूरोपियन रोल्लर

नीलकंठ एक पक्षी है, जो रगिस्तानी क्षेत्र में अगस्त से दिसंबर तक खरीफ फसल के पकाव के सीजन में मरुधरा में देखने को मिलता है। यह किसान का मित्र पक्षी है। फसल को नुकसान पहुंचने वाले कीटों का भक्षण करता है। खेती का सीजन समाप्त होने के पश्चात बहुत कम संख्या में उन तालाबों के किनारों पर देखने को मिलता है, जिनमें पानी रहता है। जमीन के कीड़ों, टीडों, बिच्छु, मकड़ी छोटे सांप आदि को शिकार बनाता है।

नील कंठ पहले ज्यादा संख्या में दिखते थे, अब इनकी संख्या काफी कम हो गयी है। पहले गांव के लोग इस पक्षी का नाम जानते थे, वर्तमान पीढ़ी इसका नाम नहीं जानती। यह बहुत कम संख्या में दिखते हैं। अधिकांशतः इनको पारंपरिक जल स्त्रोतों के किनारों पर देखा गया। यह मानव बस्ती दूर, एकांत में रहता है तथा शामलात संसाधनों व खेती के समय खेतों में दिखता है। ओडिशा, तेलंगाना और कर्नाटक में नीलकंठ को राज्य पक्षी का दर्जा है। कहा जाता है कि विष्णु के लिए इसकी पूजा की जाती है। दशहरा या दुर्गा पूजा के अंतिम दिन इसका दिखाई देना शुभ माना जाता है।

नीलकंठ की संख्या कम होने का प्रमुख कारण कृषि में रसायन खाद एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग रहा है। यह सिचिंत खेतों में कीटों को खाते हैं तथा इससे कीटनाशक इनके शरीर में पहुंच जाता है, तथा इनके मौत का कारण बन जाता है।

अभ्यास के लिए :

- नीलकंठ को किसान मित्र पक्षी क्यों कहा जाता है।
- नीलकंठ प्रजाति के समाप्त होने पर प्रकृति एवं हमारी खेती पर क्या प्रभाव पड़ेगा।
- क्या चारागाहों व तालाब, नाडियों को ठीक करने से इनकी संख्या बढ़ सकती है।
- नीलकंठ प्रजाति पूरी तरह समाप्त हो जाएगी, तो पर्यावरण व हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पडेगा।

स्थानीय नाम : **खातीड़ा, खाती चिड़ा, कठफोड़वा**

अंग्रेजी नाम : **Yellow crowned woodpeaker**

कठफोड़वा थार के रेगिस्तान में पहले बहुतायत में पाया जाता था, अब इनकी संख्या बहुत कम हो गयी है। पचास-साठ वर्ष पहले तक ये जल स्त्रोतों के किनारे, ओरण, गौचर व खेतों में काफी संख्या में दिखते थे। अब यह संयोग से ही दिखता है।

यह किसानों का बहुत अच्छा मित्र है। भूमि के अंदर फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीट, लट को अपनी लंबी चौंच से ढूंढ़ कर खाता है। इसे यह जानकारी होती है, कि कहां इसे कीट मिलेंगे।

लंबी, कठोर चौंच व सिर पर किलंगी वाला यह पक्षी पेड़ों के सख्त तनों को चौंच से ठोक-ठोक अपना रहने का ठिकाना बनाता है। पहले खेतों में खट-खट की आवाजें सुनाई देती थी, जिससे यह पता चल जाता था कि यहां पर कठफोड़वा है।

थार के रेगिस्तान में पीले रंग व ऊपर काली धारी वाले कठफोड़वा की प्रजाति है। राजस्थान में लकड़ी की वस्तुएं बनाने वाले समुदाय को खाती, सुथार कहते हैं, शासद इसी कारण इस पक्षी का नाम खाती चिड़ा रखा गया हो।

पारिस्थितिक तंत्र को सहयोग करता है। यह फसलों, फलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों को खाता है। थार मरुस्थल जैव विविधता कड़ी का सदस्य है। इनकी संख्या में लगातार कमी होने का प्रमुख कारण जल स्त्रोतों व चारागाहों का अनुपयोगी होना है। रेगिस्तान को असंख्य जीव-जंतुओं, वनस्पतियों वाला क्षेत्र बनाए रखना है, तो इन संसाधनों को उपयोगी बनाना होगा। दूसरा कारण है खेतों में रसायनिक कीटनाशकों का उपयेग। किसान फसल में कीटनाशक डालते हैं। कुछ कीट उससे मरते नहीं लेकिन जहर का अंश उनके शरीर रहता है। कठफोड़वे उन कीटों को खाते हैं तथा धीरे-धीरे मर जाते हैं।

स्थानीय नाम : तीतर

वैज्ञानिक नाम : (Francolinus Pondicerianus) फ्रैन्करेलीनस पौंडिसरिएनस

तीतर प्रजाति का यह पक्षी मरुधरा में समस्त क्षेत्रों में पाया जाता है। मरुस्थल में सफेद रंग में भूरे रंग की धारियों वाले तीतर अधिक देखने को मिलते हैं। गांव से लेकर खेतों तक में इनकी उपस्थिति देखी गयी है। यह अधिकतर घनी झाड़ियों, खेतों की मेड़ में रहते हैं। इसकी उड़ान अधिक नहीं होती। ज्यादातर जमीन पर चलता है। लेकिन खतरा भांप कर उड़ान भी भरता है।

थार के रेगिस्तान में यह छोटा सुंदर पक्षी यहां की जैव विविधता का सदस्य है। यह किसान का मित्र है। जमीन में रहने वाले कीटों को अपना भोजन बनाता है। यह दीमक को भी खाता है। अनाज के दाने भी चुगता है।

तीतर अपना घौंसला घास-फूस से जमीन पर बनाता है। उसी में मादा अंडे देती है। बच्चे निकलने पर नर-मादा दानों उन्हें घास मैदानों में कीड़े-मकोड़े खाना सिखाते हैं। इसका रंग मिट्टी से मिलता है, इस लिए घास मैदानों या खेतों में आसानी से दिखाई नहीं देता। यह जोर से बोलता है, जिससे पता चलता है कि नजदीक में तीतर है।

किसान खेत में तीतर का भी शकून देखते हैं। ऐसा मानते हैं कि खेत की तरफ जाते समय बांयी तरफ तीतर बोले तो शुभ संकेत है।

तीतर का शिकार चोरी छिपे अधिक मात्रा में किया जाता है। मांसाहारी इसके मीट को बहुत पसंद करते हैं। यह घनी झाड़ियों में छिप कर रहते हैं। घनी झाड़ियां कम होने के कारण भी इनकी संख्या कम हुई है। नहरी तथा ट्यूबवैल वाले सिंचित क्षेत्रों में तीतर देखने को नहीं मिलते। कीटनाशकों के उपयोग के कारण वहां पर तीतर मर गये इस कारण से इनकी संख्या पहले की तुलना में कम हुई है।

स्थानीय नाम : पींचा

हिंदी, उर्दू नाम : बुलबुल

अंग्रेजी नाम : रेड वेंटेड (Red Vented) येलो ब्रोव्ड (Yello Browed)

बुलबुल पिकनोनॉटिडी (Pycnonotidae) कुल की चिड़िया है। बाड़मेर जिले में इसका स्थानीय नाम पींचा है। हिंदी व उर्दु में इसे बुलबलु के नाम से जानते हैं। विश्व भर में बुलबुल की 130 प्रजातियां पाई जाती है। भारत में पांच प्रकार की बुलबुल मुख्य है।

1. गुलदुम (Red Vented)
2. सिपाही (Red Wishkered) Red Vented
3. मछरिया (White Browed)
4. पीला (Yello Browed)
5. कांगड़ा (White Checked)

इनमें से मरुधारा में दो प्रकार की बुलबुल मुख्यतः देखी गई है।

गुलदुम (Red Vented) सिर पर किलंगी नुमा काली टोपी व मुंह पूरा काला होता है तथा दुम का निचला भाग लाल होता है। (Yello Browed) बुलबुल का सिर काला, आंखों के पास सफेद ऐनक जैसा निशान व दुम का निचला हिस्सा पीला होना इसकी पहचान है। रेगिस्तान में केर, कूमटों, जाल, खेजड़ियों, झाड़ियों, घने वृक्षों वाले स्थानों पर यह काफी संख्या में दिख जाती है।

इसे गायक पक्षी कहते हैं। बुलबुल को संबोधित करते हुए एवं प्रतीक के रुप में कई गीत व गजलें लिखी गई है। केवल नर बुलबुल ही गाता है, मादा नहीं गाती। यह घास-फुस, पत्तों, तिनकों व रेसों से कटोरी नुमा सुंदर घौसला बनाती है। बुलबुल भी जैव विविधता को संतुलित बनाने में योगदान देती है। अपनी मधुर आवाज से लोगों का ध्यानाकर्षित करा लेती है।

बुलबुल किसानों की सहयोगी चिड़िया और प्रकृति की मित्र है। यह खेती में नुकसान पहुंचाने वाले कीटों को खाती है तथा प्रकृतिक किटनियंत्रक है। फल-फूलों के गुण एक से दूसरे तक पहुंचाती है जिसे परागण प्रक्रिया कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह कैर, कूमट, पीपल, बरगद आदि वृक्षों के बीजों को खाती है तथा बीट के माध्यम से वृक्षों के नए पौधों का प्रसार करती है। इससे फसल व फलों की उपज में वृद्धि होती है। प्रकृति तंत्र को संतुलित बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी संख्या धीरे-धीरे कम हो रही है। तालाब के किनारे व चारागाहों की घनी झाड़ियों व वृक्षों के पास दिखती है। पारंपरिक जल स्रोतों व चारागाहों को बनाए रखना ही इसका संरक्षण है।

नाम : छोटा तोता
ग्रीन-बी एटर (Green-be atter)

हल्के हरे रंग की यह चिड़िया मरुधरा में तालाबों के किनारे, घने वृक्ष व झाड़ियों में दिखती है।

मधु मक्खियों और कीटों को अपना आहार बनाने वाली यह चिड़िया शुष्कीय जलवायु वाले प्रदेशों में अधिक रहती है। यह गांबिया, इथियोपिया, नील नदी, पश्चिम एशिया में भारत से वियतनाम और उपसहारा अफ्रीका तक विचरण करती है। रंग-रूप के अतिरिक्त अपने पंखों के पीछे दो भांगों में विभाजित लंबी पूंछ आकर्षण केंद्र है। पीछे के पंखों से जुड़े दो लंबे तार की तरह दिखने वाली यह पूंछ दूर से इसकी पहचान और उपस्थिति से परिचित कराती है।

जलवायु और वातावरण के अनुसार इसका रंग हल्का और गहरा तथा रंगरुप और आकार में बदलाव होता है। आंखों के पास एक लंबी सी काजलीय रेखा होती है। यह कीटों को हवा में उड़ते हुए पकड़ती है। नाडी, तालाब व पशु खेलियों के आस-पास भी घूमती है और उड़ते हुए पानी में से भी कीटों को पकड़ लेती है।

ग्रीन-बी एट्टर किसानों की सहयोगी है। यह खेती में नुकसान पहुंचाने वाले कीट को खाती है तथा प्राकृतिक कीट नियंत्रण एवं पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। फसलों व फल-फूलदार पौधों पर परागण की प्रक्रिया संचारित करती है, जिससे किसानों को बेहतर उपज मिलती है। प्राकृतिक एवं मानव जनित कारणों से इनकी संख्या धीरे-धीरे कम हो रही है। ग्रीन-बी एट्टर के सरंक्षण के लिए पारंपरिक जल स्रोतों एवं चारागाहों का विकास व समुदाय द्वारा प्रबंधन जरूरी है।

स्थानीय नाम : टिटहरी

वैज्ञानिक नाम : रेड वैटलेड लेपविंग **(Red Wattled Lapwing)**

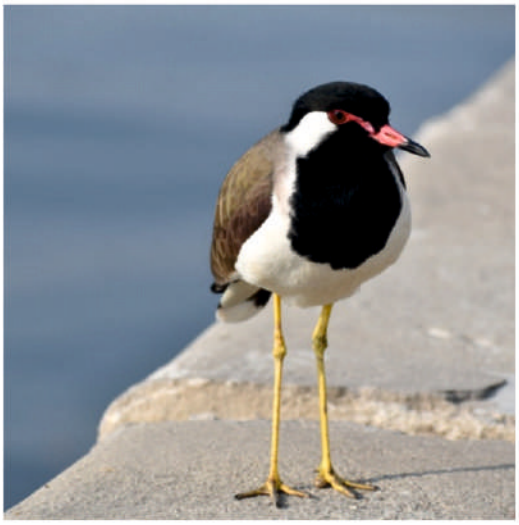

मरुधरा में यह पक्षी अधिकांशतः ताल, तालाबों, झीलों, पोखरों के किनारे रहता है। जहां भी पानी का भराव होता है, टिटहरी वहां जरूर पहुंच जाती है। यह पानी में रहने वाले जीवों को खाती है। दिखने में बहुत सुंदर होती है।

लाल रंग की चोंच का नुकीला भाग काला, आंखें के पास लाल निशान से लगता है कुदरत ने आंखों पर रंगीन एनक लगाया हो, सिर से गले तक काली पट्टी, पंख हल्के भूरे, पेट सफेद और पीले रंग के लंबे पैरों को देखकर लगता है कुदरत ने सारे रंग इसी में भर दिए।

आवाज बहुत तीखी व तेज होती है। जब कोई शिकारी पक्षी या जानवर इनके अंडों या चूजों के पास आते हैं तो यह तेज आवाज करती हुई चोंच से प्रहार कर हमला बोल देती है। झुंड में हो, तो पूरा झुंड एक साथ हमला करता है और शिकारी को भगा देता है।

यह घौसला खुले मैदान में सुरक्षित जगह पर बनाती है तथा अंडे देती है। तालाब, नाडी की पाल पर, मैदान की कंटीली झाड़ियों में अंडे देती है। टिटहरी के अंडों को लेकर एक मान्यता है कि यह जितनी ऊंचाई में अंडे देती है, उतनी ऊंचाई तक बरसात का पानी चढ़ेगा।

मानसून से पूर्व लोग तालाबों के किनारे, ताल की ऊंची जगहों पर टिटहरी के अंडे देखने जाते हैं और तालाब व मैदान में कितने स्तर तक पानी चढ़ेगा, इसका अंदाजा लगाते हैं। नाडे तालाब की पाल के ऊपरी भाग में अंडे दिए हैं तो लोग पाल को मजबूत करने का काम करते हैं ताकि पाल टूटे नहीं। टिटहरी जितने अंडे देती है, उनकी गिनती करते हैं। ऐसा माना जाता है कि उसने जितने अंडे दिए, उतने महीने बरसात होगी। अंडे किस अवस्था में पड़े हैं, उनको देख कर भी तेज और धीमी बरसात का अंदाजा लगाते हैं। अंडे खड़े हैं, तो तेज बरसात और लेटी अवस्था में हैं, तो धीमी गति से बरसात। यह मरुस्थलीय जैव विविधता की सदस्य है तथा पारंपरिक जल स्त्रोतों के उपयोगी होने के कारण ही यहां की सदस्य बनी है।

स्थानीय नाम : चिड़कली, हिंदी, गोरैया हाउस स्पैरो (House Sparrow)

वैज्ञानिक नाम : पासर डोमस्टिकस (Passer Domesticus)

स्थानीय नाम : नर चिड़ा, मादा चिड़कली है। यह जोड़े में रहती है। नर गोरैया के गले के पास चोंच के नीचे काला धब्बा होता है। पंखों पर काले, भूरे रंग की धारियां होती है। मादा के गले से लेकर पेट तक सफेद रंग होता है तथा पंखों पर हल्की काले-भूरे रंग की धारियां होती है।

गोरैया विश्व में सबसे अधिक पाई जाने वाली चिड़िया है। यह मानव बस्तियों के आस-पास रहती है। घरों में घोसला बनाकर अंडे देती है। घोसला नर बनाता है तथा अंडों की सुरक्षा व चूजों को खाना दोनों मिलकर खिलाते हैं।

यह कीट भक्षी है, लेकिन मानव बस्तियों के पास रहने के कारण अनाज के दाने, फल आदि भी खाती है। फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों को खाती है तथा किसान की मित्र है। घरों में सांप, बिल्ली या जहरीला जानवर घुस जाने पर झुंड में चीं-चीं का शोर करती है, जिससे मानव खतरे से सचेत हो जाता है। जैव विविधता को संतुलित रखती है। चीन में 1950 में फसलों को नुकसान पहुंचाने के कारण गोरैया मारो अभियान चलाया गया था। नतीजा उल्टा हुआ। गोरैया कम होने से फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों की संख्या बढ़ गई थी।

गोरैया की घटती संख्या समूचे विश्व में चिंता का विषय है। इसे संरक्षण व सुरक्षा प्रदान करने के लिए 20 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय गोरैया दिवस घोषित किया गया है।

स्थानीय नाम : शिकारा

वैज्ञानिक नाम : एक्सिपिटर बेडिअस (Accipiter Badius)

शिकरा, एक शिकारी पक्षी है, जिसने एशिया और अफ्रीका व भारत देश के विभिन्न हिस्सों में विचरण करते हुए थार मरुस्थल की शुष्क जलवायु को अपनाया और यहां की जैव विविधता खाद्यश्रृंखला का हिस्सा बन गया। शिकारी पक्षी से ही शिकरा नाम पड़ा। बाज प्रजाति का छोटा श्किारी पक्षी है जो उड़ान और बुद्धि दोनों में ही तेजतर्रार है।

कुदरत ने इसे विविध विशेषताएं बक्शी है। स्वरक्षा के लिए चौकन्ना रहने की समझ, तेज गति से सुचारु उड़ान भरने वाले पंख, आकाश में उड़ते हुए शिकार की टोह लेने वाली तेज दृष्टि, घात लगाकर हमला करने का कौशल्य, शिकार को दबोचने के लिए नुकीले मजबूत पंजे और शिकार को उधेड़ने के लिए तेज धार वाली चौंच। यह सारी विशेषताएं शिकरे को शिकारी की पहचान देती है।

कोयल के आकार वाले शिकरे की पहचान कैसे करें। जंगल में झुरमुट झाड़ियों, गहरे वृक्षों के बीच तीखी व तेज आवाज में दो बार चीउ-चीउ की आवाज सुनाई दे, समझ लेना चाहिए शिकार की टोह में शिकरा है। आकाश में स्वच्छंद व मस्त उड़ान के समय खुले पंखों के नीचे डिजाइनदार चिन्ह उभरे दिखाई देते हैं। वृक्ष पर बैठा हुआ है तो गर्दन के नीचे से पेट तक सफेद- कत्थई धारियां, पेट के निचले हिस्से से जांघों तक सफेद रोएदार छोटे पंख, ऊपर के पंखों का रंग हल्का भूरा तथा पेरों का रंग पीला, भूरे रंग के नुकिले नाखून वाले पंजे शिकरे की पहचान है। नर के आंखों की पुतलियां लाल व मादा की पुतलियां पीला रंग लिए होती है।

शिकरा अपने आकार जितने बड़े जैसे कौआ, कबूतर, तीतर, बटेर का शिकार आसानी से कर लेता है तथा पंजों में जकड़ कर उड़ सकता है। चूहा, गिलहरी, गिरगिट, सांडा, छोटे सर्प भी इसके भोजन श्रृंखला के भाग हैं। खुले मैदानों में उड़ते हुए शिकार की टोह लेता है तथा सधी हुई रफ्तार से शिकार को पंजों में दबोच लेता है। चील से कई बार आकाश में झगड़ा होते देखा जा सकता है।

मरुधरा के जंगली जानवर

स्थानी नाम : हरिण, प्रजाति चिंकारा

चिंकारा का वैज्ञानिक नाम : गजेला बेनेट्‌टी (Gazella bennettii)

चिंकारा हिरण

काला हिरण

हरिण ऐसे स्थानों पर पाए जाते हैं, जहां सतह पर पानी हो। मरुधरा में चिंकारा (Gazella bennettii) व काला हिरण जिसे अंग्रेजी में ब्लैकबक (Blackbuck) कहा जाता है, का वैज्ञानिक नाम (Antilope Carvicapra) एंटीलोप सेरवीकप्रा है तथा भारत में (Indian Antelope) भी कहा जाता है।

मरुस्थल में चिंकारा व काला दो प्रजाति के हरिण पाए जाते हैं। मरुस्थल में तालाबों, नाडियों में सतही पानी एवं हरे घास मैदान उपलब्ध होने के कारण यहां बहुतायत में देखने को मिलते हैं। बिना पानी के लंबे समय तक रहने की मरुस्थलीय अनुकूलनता के कारण ही यह सघन मरुस्थलीय जिले बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर व जैसलमेर क्षेत्र में झुंड में रहते हैं तथा जैव विविधता व पारिस्थितिकी संतुलन में योगदान देते हैं।

कम पानी में जीवित रहने के कारण राजस्थानी में हरिण को लेकर यह प्रेरणादायी कहावत प्रचलित हुई-''आक बटूकै (आक का पौध चबाना) पवन भखै (हवा की नमी से पानी की पूर्ति), तुरिया (घोड़ा) आगल जाय (आगे जाना) गीरको कर (हिम्मत कर) रै कंथड़ा हिरण किसो घी खाय।'' हिरण की रफ्तार काफी तेज होती है। यह 60 से 90 किलोमीटर प्रति घंटा से दौड़ता है। बाघ के बाद तेज गति से दौड़ने वाला दुनिया का दूसरा प्राणी है।

स्तनधारी हरिण के सिर पर अपनी सुरक्षा के लिए सींग होते हैं। वर्ष भर बाद पुराने सींग गिर जाते हैं तथा नए उग जाते हैं। पहले के समय में हरिण के सींग चारपाई, दरी आदि बनाने के लिए औजार के रूप में उपयोग किया जाता था।

राजस्थान में विश्नोई समुदाय हरिण को पवित्र मानता है तथा संरक्षण व सुरक्षा देता है। हरिण के शिकार को रोकते हैं तथा किसी प्रकार से हानि नहीं होने देते। विश्नोई समुदाय के गांवों के आप-पास इनकी संख्या ज्यादा मिलती है।

हरिण के शिकार पर रोक तथा सजा का प्रावधान होने बावजूद शिकारी मीट तथा चमड़े के लिए शिकार करते हैं, इस लिए कुछ स्थानों पर इनकी संख्या बहुत कम है।

स्थानीय नाम : रोजड़ा, हिंदी : नील गाय

वैज्ञानिक नाम Boselaphus Trogcamelus (बोस्लाफस ट्रेगोकैमेलस)

नर नील गाया

मादा नील गाया

जल स्त्रोतों के आगौर, ओरण, गौचर में घोड़े के आकार वाले स्तनधारी पशु को स्थानीय भाषा में रोज, रोजड़ा के नाम से जानते हैं। हिंदी में इसका नाम नील गाया, अंग्रजी में मादा को ब्ल्यू काऊ तथा नर को ब्ल्यू बुल कहते हैं।

शुष्क, अर्धशुष्क क्षेत्र घास मैदानों में पाया जाने वाला हिरण प्रजाति का सबसे बड़ा जीव है। गर्मी सहन करने एवं बिना पनी बहुत दिनों तक रह पाने के कारण ही यह मरुस्थल में रह पाया है। जल स्त्रोतों के आगौर, ओरण, गौचर में झुंड में चरते हुए दिख जाते हैं।

मादा का रंग हल्का भूरा-नारंगी तथा नर का रंग सलेटी होता है। आगे के पैर पीछे की तुलना में लंबे होने के कारण पीठ पीछे की तरफ ढलुआं होती है। गाय शब्द जुड़ जाने के कारण लोग इसका शिकार नहीं करते।

यह प्रणी भी मरुधरा की जैव विविधता चैन की कड़ी है तथा यहां के पारंपरिक जल स्त्रोतों व चारागाहों की उपलब्धता होने के कारण यहां रह पाए हैं। पूर्व में जैव विविधता चैन में टूटन नहीं आने के कारण इनकी संख्या संतुलित थी। भैड़िया, लक्कड़बग्घा होने के कारण वे इनका शिकार कर लेते थे। यह पूर्णतः लुप्त हो जाने के कारण नील गाय की संख्या बढ़ रही है।

चारागाहों की प्रबंधन व्यवस्था टूटने, उनकी भौतिक स्थिति खराब होने, आतिक्रमण हो जाने के कारण यह खेतों में नुकसान करते हैं, तथा किसान इन्हें अपना दुश्मन मानने लगे हैं। इनको संरक्षण देने के लिए पारंपरिक जल स्त्रोतों व चारागाहों को उपयोगी बनाना होगा।

मरुस्थल के मांसाहारी जानवर

स्थानी नाम : **गादड़ा, गीदड़**

वैज्ञानिक नाम : **केनिस ल्यूपस (Canis lupus)**

गीदड़ को स्थानीय भाषा में गादड़ा कहते हैं। भेड़िया, सियार, गीदड़, लौमड़ी व लकड़बग्गा यह सभी कुत्ता प्रजाति के उपसमूह प्राणी हैं, तथा खाद्य श्रृंखला की कड़ी हैं। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण रंग, आकार-प्रकार व व्यवहार में अन्य क्षेत्रों के मुकाबले बदलाव संभव हुआ है।

गीदड़ जिसे मरुस्थल में गादड़ा कहा जाता है, की संख्या बहुत कम रह गई है। मासांहारी जीव हैं तथा जंगल में मरे हुए पशुओं के अतिरिक्त खरगोश, हिरण, नीलगाय, चूहों आदि को भोजन का हिस्सा बनाते हैं। गांव के बुजुर्ग बताते हैं कि पहले गांवों के चारागाहों, खेतों में इनकी संख्या ज्यादा थी। रात्रि में बोलते सुनाई देते थे। मौका पाने पर भेड़-बकरियों को उठाकर ले जाते थे। यह रात्रि में शिकार करते थे। मरुस्थल के ओरण, गौचर एवं उनमें बने पारंपरिक जल स्त्रोत इनके रहने की खास जगह थी। यह जमीन में गड्ढा खोद कर घर बनाते थे, जिसे स्थानीय भाषा में घुरी कहते हैं।

स्थानी नाम : **लूंकड़ी, लोमड़ी**

वैज्ञानिक नाम : **(Cannis Vulpes)**

लोमड़ी की पहचान चतुर और चालाक प्राणी के रुप में होती है। चातुर्य की अनेकों कहनियां बाल साहित्य, पंचतंत्र की कहानियों में मिलती है। मरुस्थल में लोमड़ी की पिछले तीस-चालीस वर्षो में संख्या काफी घट गई है। संरक्षण नहीं मिला, तो कुछ समय पश्चात यह लुप्त हो जाएगी।

लोमड़ी के लिए पहले बच्चे राजस्थानी की यह पंक्तियां बोलते थे जो उन्हें दादी-नानी सुनाती थी-लूंका लूंकड़ी बोले, बैठी झाड़की ओलै, आयो खेत रो धणी, लूंका पाछी नै तणी। अब बच्चों को लोमड़ी देखने को नहीं मिलती, तो यह पंक्तियां भी भूल गए।

यह किसान की मित्र है। खेतों में चूहों की संख्या को नियंत्रित करती है। यह शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन करती है। खरीफ सीजन में यह खेतों में काकड़िए, मतीरे तथा देशी बोरड़ी के बेर खाती है। जीवों में चूहों, झाऊ चूहों, सांप, गिलहरी, खरगोश आदि का शिकार करती है। यह अकेले रहना पसंद करती है। रेगिस्तान में तापमान अधिक होने के कारण भोजन की तलाश में रात्रि में निकलती है। पानी के लिए पारंपरिक जल स्त्रोतों पर निर्भर रहती है। चारागाहों में घनी झाड़ियों के बीच जमीन में गड्ढा खोद कर घर बनाती है, जिसे लूकड़ी की घुरी बोलते हैं। बढ़ती आबादी, ढांचागत विकास के तहत सड़कों का निर्माण, सिंचित कृषि में कीटनाशकों का उपयोग, पारंपरिक जल स्त्रोतों व चारागाहों की खराब स्थिति इसकी घटती संख्या के प्रमुख कारण है।

स्थानी नाम : जरख, लक्कड़बग्घा

वैज्ञानिक नाम : फेलीफोर्मिया (Feliformia)

जरख जिसे लक्कड़बग्घा के नाम से भी जाना जाता है, रेगिस्तान के जंगलों में मौजूद था। यह कुत्ता वंश का मांसाहारी प्राणी है। यह काफी डरावना तथा खूंखार होता है। खाद्य श्रृंखला कड़ी से जुड़कर यह जैव विविधता के संतुलन को बनाए रखता है। झुंड में रहता है तथा इतना शक्तिशाली होता है, कि शेर के मुंह से भी शिकार छीन लेता है।

साधारणतः यह लगता है, प्रकृति में किसी प्राणी के नहीं होने से क्या फर्क पड़ता है। लेकिन प्राकृतिक चक्र जिसमें बनने, मिटने व फिर बनने की प्रक्रिया की दृष्टि सभी जीवों का होना महत्वपूर्ण है। सभी जीवों की प्राकृतिक खान-पान की व्यवस्था बनी हुई है। भोजन के लिए सभी एक दूसरे पर निर्भर हैं। गीदड़, लोमड़ी, जरख विलुप्त होने के कारण ही नीलगाय, सुअरों की संख्या बढ़ी है। तीनों प्राणी मरे हुए पशुओं को भी खाते थे। अब मृत पशुओं को ठिकाने लगाना भी एक समस्या बन गई है।

सरीसृप प्रजाति के जीव

स्थानीय नाम : गोह, पाटा गोह

वैज्ञानिक नाम : मोनिटर लीजार्ड (Monitor Lizard)

गोह अथवा पाटा गोह मरुस्थल जीवजगत का सदस्य है। अधिकतर पारंपरिक जल स्त्रोतों एवं पानी ठहराव, नमी तथा कीचड़ वाले स्थानों के आस-पास ज्यादा रहता है। खेतों में बाड़, घनी झाड़ियों वाले स्थानों पर छिप कर रहता है।

यह छिपकली कुल का जहरीला प्राणी है, लेकिन छिपकली से बड़ा होता है। इसकी लंबाई 3 से 4 फुट तथा इतनी ही लंबी पूंछ होती है। चमड़ी तथा पंजे बहुत मजबूत होते हैं। रंग मिट्टी से मिलता-जुलता होने से आसानी से दिखाई नहीं देता।

यह चूहों, कीड़े, मकोड़ों, पेड़ों पर चढ़कर पक्षियों व उनके अंडों को खाता है तथा प्रकृति के जैवीय संतुलन को बनाए रखता है। इसका शिकार करना अपराध है लेकिन, चमड़े से कई प्रकार की वस्तुएं बनती है, इस लिए शिकारी चोरी छिपे शिकार करते हैं। यह जीव मरुस्थलीय पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने में योगदान करता है।

स्थानीय नाम : सांडा

वैज्ञानिक नाम : Spiny-Tailed Lizards (स्पाइ टेल्ड लिजार्ड)

छिपकली वंश की इस प्रजाति सांडा को जीव विज्ञान में स्पाइनी टेल्ड लिजार्ड (Spiny-Tailed lizard) या भारतीय स्पाइनी टेल्ड लिजार्ड के नाम से जाना जाता है। यह थार मरुस्थल का प्रमुख प्राणी है जो गुजरात कछ व पाकिस्तान में भी पाया जाता है। शुष्क क्षेत्रों के कठोर धरातल वाले मैदानी क्षेत्रों में रहने वाला शाकाहारी जीव है। कांटेदार पूंछ वाला यह प्राणी ऊंचाई वाले स्थानों में अपना बिल (बांबी) बनाकर रहता है। यह शीतकाल में शीतनिंद्रा में रहता है। रीढ की हड्डी व पूंछ में वसा की लंबी पट्टियां बना लेता है, जो शीतनिंद्रा में इसे जिंदा रखती है। भोजन के रूप में मानसून में जड़ीबूंटिया, घास, पत्तियां तथा छोटे कीड़ों को खाता है।

इनकी संख्या लगातार घट रही है। इसका मुख्य कारण नीम हकीमों द्वारा फैलाई गई यह भ्रांति है कि इसकी चर्बी (तेल) असाध्य रोगों के ईलाज के लिए फायदेमंद है। शिकारी चोरी छिपे शिकार कर क्रूरतम तरीके से मार कर इसकी चर्बी निकालते हैं। वर्तमान में यह जैसलमेर, जोधपुर, चूरु के ताल छापर, नागौर के मैदानों, जल स्त्रोतों के आगौर में बहुत कम संख्या देखने को मिलता है। वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 के अनुसूची 2 में संरक्षित प्राणी घोषित किया गया है। शिकार करते पकड़े जाने पर तीन वर्ष की सजा का प्रावधान है।

वर्षा आने की संभावना से पूर्व यह अपने बिल को रेत से बंद कर लेता है। रेत से बंद बिल को देख कर किसान व पशुपालक वर्षा आने पुख्ता संकेत मानते हैं। बांबी के कारण वर्षा का पानी भूमि में जाता है तथा प्राकृतिक भू-जल रिचार्ज एवं मरुस्थलीय पारिथितिकी संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान करता है।

स्थानीय नाम : किरकांट्या, किरड़ा, हिंदी में गिरगिट

वैज्ञानिक नाम : Chameleon

गिरगिट छिपकली प्रजाति का जीव है जो वर्षा वनों, शुष्क, अर्धशुष्क गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। अपनी त्वचा का रंग बदलने वाला गिरगिट थार मरुस्थल में भी विद्यमान है। यह छोटे आकार के कीड़ों को खाता है तथा जैवविविधता संतुलन बनाकर मरुधरा के पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूत रखता है तथा कीटों को खाकर किसानों की मदद करता है।

गिरगिट के माथे व थूथन पर कांटेदार रोए होते हैं तथा खतरे को भांप कर यह खड़े हो जाते हैं। पूंछ शरीर के आकार से लंबी होती है, जो टहनियों पर चलने, आराम करने में संतुलन बनाती है। पंजे पक्षियों की तरह होते हैं जिनकी सहायता से पेड़ों की शाखाओं पर चलता है। लंबी जीभ शिकार दबोचने में सहायक है। गिरगिट की आंखे एक दूसरे से स्वतंत्र रहकर एक साथ दो दिशाओं में देख सकती है।

सूरज की रोशनी के अनुसार यह अपनी त्वचा का रंग बदलता है। इसकी गर्दन का रंग गहरा लाल हो जाता है, तो वर्षा आने का शुभ संकेत माना जाता है। अन्य जीवों की भांति प्रकृति के साथ असंतुलित मानवीय छेड़छाड़ के कारण गिरगिट की संख्या में भी कमी आई है जो मरुधरा की पारिस्थितिकी के संदर्भ में शुभ संकेत नहीं है।

स्थानीय नाम सेला, सेउड़ा, हिंदी नाम, झाऊ चूहा

अंग्रेजी नाम **Long Eared Hedgehog** या **Indian Desert Hedgehog**

वैज्ञानिक नाम : **Hemiechinus Collaris**

थार मरुस्थल की जैव विविधता जितनी व्यापक उतनी ही आश्चर्यजनक है। झाऊ चूहा भी इसका एक अनूठा जीव है। यह वसंत या गर्मी में दिखाई देता है, सर्दी में शीतनिंद्रा में रहता है। इसकी त्वाचा नुकिले कांटों से ढंकी रहती है, जो शिकारी जीवों से रक्षा करती है। वास्ताव में चूहा नहीं है, यह स्तरनधारी जीव है। यह कीटखोर है तथा खेतों के आस-पास होना लाभप्रद है।

इस जीव ने अपने जीवन को परिस्थिति के अनुकूल बनाया तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए त्वचा पर कांटेदार क्वच बना लिया। शिकारी जीव आसानी से शिकार नहीं कर सकते, क्यों कि खतरे को भांप कर यह अपने मुंह और पैरों को समेट कर अपने को गेंद की तरह बना लेता है। फिर भी नवेला और लोमड़ी चालाकी से इसका शिकार कर लेती हैं। किसानों के साथी इस जीव को दशहरे के दिन देखा जाना शुभ माना जाता है और यह इनके संरक्षण की प्राचीन परंपरा है। लेकिन कुदरत के साथ इन्सानी हस्तक्षेप के कारण यह जीव भी दुलर्भ हो गया है। यह कीटों को खाकर किसानों की सुरक्षा करने के साथ-साथ जमीन में बांबी बनाकर रहता है तथा कुदरती भूजल रिचार्ज की संरचनाओं का निर्माण करता है।

स्थानीय नाम : जंगली ऊंदरा, मूसक, चूहा अंग्रजी में माउस (Mouse) रैट (Rst)

वैज्ञानिकनाम : (Muridea)

ऊंदरा और चूहा कहने-सुनने में एक जैसे लगते हैं, लेकिन दोनों में अंतर है। चूहे आकार में छोटे तथा घरों, दुकानों, गोदामों में ज्यादा रहते हैं, जब कि ऊंदरा आकार में बड़ा तथा खेतों, चारागाहों में रहता है। मरुस्थल में यह प्रायः सभी जगहों में पाया जाता

है। भूरे रंग के बालो वाली कोमल त्वचा वाले इस स्तनधारी की पूंछ लंबी तथा अंतिम सिरे पर बाल होते हैं। नाक के ऊपरी हिस्से पर बाल होते हैं, जिसे मूंछ कहा जाता है। पैरों में छोटे नाखून होते हैं, जिससे यह मिट्‌टी खोद कर अपना घर बनाते हैं। यह खेतों व चारागहों में जमीन में ऊंचे स्थान पर बांबी (बिल) बनाकर रहते हैं। ऊपर से इनके बिलों का मुंह अलग-अलग दिखता है, लेकिन अंदर से एक दूसरे से जुड़े होते हैं। सांप इनकी बांबी में घुस कर शिकार करता है, इस लिए खतरा होने पर यह दूसरे दरवाजों से भागकर बचाव करते हैं।

ऊंदरा मरुस्थल में इस लिए रहता है कि इसे पानी की जरूरत नहीं होती। यह पौधों की जड़ों को खाकर पानी की पूर्ति कर लेता है। यह पौधों की जड़ों, फसलों के दानों, वनस्पतियों के बीज खाता है तथा अपने बिल में भी जमा करता है। किसी भी वस्तु को कुतरने में चूहे जितना माहिर दूसरा जीव नहीं होता। छोटे छोटे पैने दांतों से कठोर वस्तु को कुतर देते हैं।

सांप, बिल्ली, बाज, उल्लू, लोमड़ी आदि का यह यह पसंदीदा भोजन है। शिकारी जीवों की संख्या कम होने से इनकी संख्या अनियंत्रित हो जाती है। नियंत्रित संख्या में ऊंदरा किसान का मित्र है, बहुंसख्या में दुश्मन। यह घास व पौधों की जड़ों को कतर कर खेतों में खरपतवार को कम करते हैं। खरपतवार की जड़ों, टहनियों को कुतर कर बिल में ले जाते हैं, जहां सूक्ष्म जीव इनकी खाद बनाते हैं। बिल बनाकर भूमि को खोखला बनाते हैं तथा भू-जल रिचार्ज संरचनाओं का निर्माण करते हैं। इसे गणेश भगवान की सवारी भी कहा गया है।

मरुधरा में तितलियों का संसार

तितलियों का संसार

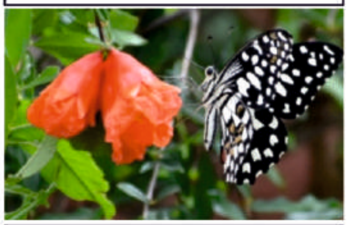

(Blue Tiger) ब्ल्यू टाइगर

(Lemon Pancy) लेमन पेनसी

(Yello Pancy) येलो पेनसी

(Plan Tiger) प्लेन टाइगर

प्रकृति में तितलियों का भी एक व्यापक संसार है। धरती पर खाद्य सुरक्षा प्रदान करने वाली इन रंगबिरंगी तितलियों की धरती पर हजारों प्रजातियां हैं। हमारे थार मरुस्थल में भी कई प्रकार की तितलियां तालाब, नाडियों के किनारे, ओरण, गौचर व खेतों में वनस्पतियों के फूलों पर मंडराती हुई दिख जाती है।

आपने पाठ्य पुस्तकों में पढ़ा होगा, तितलियां, भवंरे, मधु मक्खियां फूलों का रस चूसती है तथा पराग कणों को एक पौधे से दूसरे पौधे तक पहुंचाती है जिससे फलों, फसलों का उत्पादन होता है। परागण से ही फूल, फल, बीज पैदा होते हैं। ऐसा माना जाता है कि परागण करने वाले यह जीव नहीं होते, तो धरती पर जीवन संभव नहीं होता।

जिस वर्ष अच्छी फसल होती है, तो बोलचाल की भाषा में कहते हैं, जमाना अच्छा हुआ है। अच्छा जमाना केवल वर्षा का समय पर होना या अच्छा बीज लगाने भर से नहीं होता। परागणक जीव फूलों पर नहीं आएंगे, तो अच्छी बरसात और अच्छा बीज भी अपेक्षा के अनुरूप उपज नहीं देगा। अच्छे जमाने के लिए इनका होना महत्वपूर्ण है।

कुदरत ने थार रेगिस्तान में तितलियों व परागण वाहक जीवों के लिए विविध प्रकार की वनस्पतियां बनाई है। बारहो मास फूलों का एक चक्र बनाया है। अलग-अलग वनस्पतियों में एक समय में फूल-फल नहीं आते। वर्ष भर का कलैंडर बनाकर जांच करें, तो कोई महीना ऐसा नहीं होगा, जिसमें वनस्पतियों के फूल, फल नहीं आते हों।

पूरी धरती की तरह मरुस्थल में तितलियों की संख्या लगातर कम हो रही है। इसका मुख्य कारण तालाब, नाडियों, ओरण, गौचर का अनुपयोगी होना, स्थानीय वनस्पतियों का कम या खत्म होना, कृषि में कीटनाशकों का उपयोग, कुदरत के विपरीत मानवीय व्यवहार है।

तितलियों के संरक्षण के लिए हम क्या कर सकते हैं ?

स्थानीय वनस्पति खेजड़ी, रोहिड़ा, कैर, कूमटा, खींप आदि के पौधों को खेत में बचाएं व संरक्षण दें।

घर के आस-पास फूलों के पौधे लगाएं। किचन गार्डन लगाने से सब्जियों के पौधों के फूलों पर तितलियां आएंगी। इससे तितलियों को संरक्षण मिलेगा, तथा हमें ताजी व बिना कीटनाशक वाली सब्जियां मिलेगी।

अपने विद्यालय परिसर में स्थानीय पेड़-पौधे एवं फलों वाले पौधे लगाएं जिससे तितलियां आएंगी।

सहभागी संस्थाएं